मानस-पञ्चरत्न

इ २११

भार्गव पुस्तकालय
काशी

* श्रीः *

मानस-पत्ररत्न

★

रचयिता

मानस-राजहंस, साहित्यभूषण, महोपदेशक
पं० विजयानन्द त्रिपाठी 'धर्मरत्न'

★

प्रकाशक
भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.
ब्राञ्च—कचौड़ीगली, बनारस।

प्रथम संस्करण] * [मूल्य १)

[प्रकाशक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित]

श्री १०८ ईश्वर ... पुस्तकालय, श्री... भवन, ...

समर्पण

वरखत ब्रह्म पियूष नित हरत घोर भवघाम।
शस्य मुमुक्षु शरण्य जय श्रीसद्गुरु घनश्याम॥

दयानिधे

मैंने गोद में खेलते हुए पितृ-चरणों से 'नमामि भक्तवत्सलम्। कृपालु शील कोमलम्' की शिक्षा पाई है, जभी से मेरा प्रेम श्रीराम-चरितमानस में बना हुआ है।

प्रायेण उसी का अनुशीलन करता हूँ। ये रत्न उसी मानस के हैं, और अद्यावधि गुप्त रहे हैं, पर जिन्हें मैंने रत्न समझ कर ग्रहण किया है, सम्भव है कि वे दूसरों की दृष्टि में उपेक्षणीय हों, और मुझे बड़ी अभिलाषा है कि उनका सन्त-समाज में आदर हो। अतः मैं इन्हें सन्त-शिरोमणि के चरणों में ही अर्पण करता हूँ, क्योंकि—

जो बालक कह तोतरि बाता।
सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥

वात्सल्य-भाजन
विजयानन्द

भूमिका

जो जिज्ञासु हैं, उनके मन में शङ्काओं का उठना स्वाभाविक है। समझने की चेष्टा में शङ्काएँ उठती ही हैं। जो समझने की चेष्टा ही न करेगा, उसे शङ्का भी नहीं उठेगी। अतः शङ्का का उठना अच्छी बात है, परन्तु उसे बनाये रहना अच्छी बात नहीं है। शङ्का उठने पर उसके निरसन के लिये जी-तोड़ प्रयत्न करना चाहिये। इसका उदाहरण रामचरितमानस में गरुड़जी का प्रयत्न है।

ऐसे प्रयत्न से अपनी ज्ञान-वृद्धि होती है, और दूसरों का भी उपकार होता है। जो लोग ऐसी शङ्काओं को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपना गौरव मानते हैं, वे स्वयम् अज्ञान में पड़े रहते हैं, और दूसरों की श्रद्धा को क्षति पहुँचाते हैं। अतः उनका पतन होता है।

इस घोर काल में जब कि शास्त्र-सूर्य्य अस्तमितप्राय हैं, लौकिक विज्ञान अर्थात् अविद्या का बोल-बाला है, संसार मोहान्धकार में लिप्त है, इस समय श्री रामचरितमानस ही एक ऐसा ग्रन्थ है, जो पथ-भ्रष्ट पथिकों के लिए प्रदीप का काम दे रहा है। अतः उसका जहाँ तक प्रचार हो सके, इसके लिए प्रयत्न करना पढ़े-लिखे लोगों का कर्तव्य है।

श्री रामचरितमानस के प्रेमियों को भी शङ्काएँ उठती हैं। उन्हें दूर करने के लिये महात्माओं ने 'मानस शङ्कावली' आदि ग्रन्थों की रचना की है। परन्तु कुछ शङ्काएँ ऐसी हैं, जिनका प्रभाव सम्पूर्ण 'मानस' पर पड़ता है, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, उस ओर महात्माओं का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है। कारण यह है कि उन्हें अटल विश्वास है कि—

राम कथा कै मिति जग नाहीं। (असि प्रतीति तिनके मन माहीं)॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
कल्प भेद हरि चरित सोहाए। भाँति अनेक मुनीसन्हि गाए॥
करिअ न संसय अस जिय जानी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥

राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा विस्तार ।
सुनि आचरजु न मानिहैं, जिनके विमल विचार ॥

उन महात्माओं को यह भी विश्वास है कि शिवजी के लिए भूत, भविष्य या वर्तमान कोई पृथक् सामग्री नहीं है। उनके व्यापक प्रत्यक्ष के सामने सभी वर्तमान है। अतः वे भूत, भविष्य अवतारों का वर्णन वर्तमान् की भाँति कर सकते हैं। यथा —

जानहिं तीन काल निज ज्ञाना । करतलगत आमलक समाना ॥

अतः शिवजी के मानस विषयक शङ्काओं का उनके हृदयों में स्थान न पाना ठीक है; पर गोस्वामीजी के मानस के सम्बन्ध में जो शङ्काएँ उठायी जाती हैं, उनका उत्तर मानस के प्रेमियों के सन्तोष के लिये देना ही चाहिये।

उन महात्माओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करने के लिए मैं उन शङ्काओं का उल्लेख करके यथा-साध्य उत्तर देने का प्रयत्न इस **'मानस पञ्चरत्न'** या 'मानस की कुञ्जी' द्वारा कर रहा हूँ, और आशा करता हूँ कि जो कुछ त्रुटि इसमें हो उसे सुधार कर महात्मा लोग मुझे तथा अन्य मानस-प्रेमियो को अनुगृहीत करेंगे।

फाल्गुन कृष्ण १३,
सं० २००६ वि०

मानस का एक छात्र–
विजयानन्द त्रिपाठी

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय

विषय-सूची

१.	मास दिवस का दिवस कैसे ?	१
२.	मानस की कुञ्जी	१०
३.	मानस की छटा	२८
४.	मानस की तिथि-तालिका	४३
५.	मानस की भाषा	५२

देव दीपिका, टीका-विभूषित महाकवि गोस्वामी तुलसीदास कृत

विनय पत्रिका

टीकाकार—देवनारायण द्विवेदी

भूमिका—लेखक श्रीमान् पं० मदन मोहन मालवीय

भक्ति-रस का पूर्ण परिपाक जैसा विनय-पत्रिका में है, वैसा और कहीं नहीं। भक्ति में प्रेम तो रहता ही है, उसके साथ आलम्बन के महत्त्व और अपने दैन्यका अनुभय करना भी परम आवश्यक है। विनय-पत्रिका में इन दोनों अनुभवों के ऐसे निर्मल शब्द-श्रोत निकलते हैं कि अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और अत्यन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है। यह ग्रन्थ नीरस हृदय में सरसता पैदा करके ईश्वर-भक्ति की धारा बहाने का सामर्थ्य रखता है। ऐसे अपूर्व और हिन्दू-प्राण ग्रन्थ पर यों तो बहुत सी टीकायें निकल चुकी हैं, किन्तु फिर भी नवीन टीका की आवश्यकता बनी हुई थी। इसी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये 'देव-दीपिका' टीका निकाली गई है। इसकी टीका करने में द्विवेदी जी ने 'प्रसाद' जी सरीखे हिन्दी के धुरन्धर विद्वानों की पूरी सहायता ली है। टीका में निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं।

१—मूलपाठ बहुत ही शुद्ध रखने का प्रयत्न किया गया है। २—क्लिष्ट शब्दों का पदच्छेद और शब्दार्थ भी लिख दिया गया है। ३—भावार्थ सरल और सुलझी हुई भाषा में लिखा गया है। ४—आवश्यक बातों का विशेष विवरण प्रत्येक पद के नीचे लिख दिया गया है। ५—जिन पदों के अर्थ पुरानी टीकाओं से स्पष्ट नहीं होते, वे इस टीका से स्पष्ट हो जाते हैं। अर्थ करने में कहीं भी खींचातानी नहीं की गयी है।

छपाई सफाई सुन्दर, बढ़िया ग्लेज कागज पर छपी हुई पुस्तक, पृष्ठ-संख्या ५००, जिल्द-बँधी ग्लेज का मूल्य २॥); रफ का २)

प्रकाशक—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.

(ब्रांच—कचौड़ीगली, बनारस।)

पुस्तकालय

मासदिवस का दिवस कैसे ?

श्रीरामावतार प्रसङ्ग में पूज्यपाद गोस्वामीजी ने कहा है **'मास दिवस कर दिवस भा। मरमु न जानेउ कोइ।'** महीने दिन का एक दिन हुआ, पर इसका भेद किसी ने न जाना। कारण देते हुए कहते हैं कि **'रथ समेत रवि थाकेउ। निसा कवन विधि होइ।'** रथ के समेत सूर्य्य ठहर गये, फिर रात कैसे हो ?

ध्यान देने की बात है कि गोस्वामीजी **'रथ समेत रवि थाकेउ'** कहते हैं, **थकित भयउ ग्रह मण्डल'** नहीं कहते। इससे स्पष्ट है कि केवल सूर्य्य की गति रुकी, शेष ग्रह अपनी चाल से ठीक चलते रहे। प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए भी केवल सूर्य्य का ही चलना कहते हैं, यथा—

यह रहस्य काहू नहिँ जाना। दिनमनि चले करत गुन गाना ॥

इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि एक महीने तक सूर्य्य देव रुके रहे, तदुपरान्त चल पड़े। इसीलिये मासदिवस का दिवस हुआ।

परन्तु बात यहीं नहीं समाप्त होती। अब प्रश्न यह उठता है कि सूर्य्य देव के ठीक एक महीने रुकने का कारण क्या है, और रुकने के कारण अन्य ग्रहों से सूर्य्य के पीछे पड़ जाने पर फिर पूर्ववत् ग्रहों की स्थिति कैसे हुई ? क्योंकि सृष्टि के आदि से जो ग्रह-गणित चल रहा है, उसमें सूर्य्य देव के एक महीना एक स्थान पर रुक जाने से जो ग्रह-स्थिति में भेद पड़ा, उसका कोई समाचार नहीं है।

यह प्रश्न कई बार समाचारपत्रों में उठा; विद्वानों के लेख भी छपे; पर कोई समुचित निर्णय न हो सका। क्योंकि इसके निर्णय के लिये श्रीरामचन्द्र की जन्म-कुण्डली अपेक्षित है, जिससे उस समय की ग्रह-स्थिति का पता चले, और

उसी पर विचार करने से इन शङ्काओं के समाधान की उपलब्धि की सम्भावना है। श्रीरामचरित मानस से तो इतना ही पता चलता है कि चैत्र सुदि नवमी, अभिजित मुहूर्त में, श्रीरामावतार हुआ और इतना तो सभी जानते हैं। विशेष बातों का पता वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण और अगस्त्य संहिता से चलता है। वाल्मीकि जी कहते हैं कि—उस समय पुनर्वसु[1] नक्षत्र था, पाँच ग्रह उच्च के पड़े थे, तथा कर्क लग्न में वृहस्पति के साथ चन्द्रमा थे। अध्यात्म रामायण तथा अगस्त्य संहिता ने इतना और बतलाया कि उस समय सूर्य्य मेष में आ गये थे। (**मेषे पूषणि सम्प्राप्ते**)। फिर भी बुध, राहु और केतु के विषय में मत-भेद है। कुछ पण्डितों ने राहु को कन्या में तथा केतु को मीन में माना है, और कई पण्डितों का यह मत है कि राहु धनु के और केतु मिथुन के थे; परन्तु भृगुसंहितोक्त **वेदसागर स्तोत्र** में श्रीरामावतार की कुण्डली फलादेश के सहित मिल जाने से (जिसकी नकल अनुवाद सहित इस लेख के अन्त में दी हुई है) यह विवाद मिट गया, और यह बात सिद्ध हो गई कि वृष के बुध, कन्या के राहु और मीन के केतु थे।

---

१ ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ। नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु ॥ ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह। प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोक-नमस्कृतम् ॥ —वाल्मीकीये।

अदितिदैवत्ये पुनर्वसौ। पञ्चसु रविभौमशनिगुरुशुक्रेपूच्चसंस्थेषु। मेषमकर-तुलाकर्कमीनेषु। सचन्द्रगुरौ कर्कटे लग्ने स्थिते सति। —रामाभिरामी टीकायाम्

गुरुगौराश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके। **मेषे पूषणि संप्राप्ते** लग्ने कर्कटाह्वये। आविरासीत् सकलया कौशल्यायां परः पुमान्। —अगस्त्यसंहितायाम्

मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे। पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके। **मेषे पूषणि संप्राप्ते** पुष्पवृष्टिसमाकुले। आविरासीजगन्नाथः परमात्मा सनातनः। —अध्यात्मरामायणे

अर्थ—चैत्र सुदि नवमी पुनर्वसु नक्षत्र में पाँच ग्रह उच्च के होने पर, कर्क लग्न में गुरु और चन्द्र के होने पर, और मेष पर सूर्य्य के आ जाने पर सनातन परमात्मा प्रकट हुए।

अब कुण्डली पर विचार करने से एक विचित्र बात यह ध्यान में आती है कि जब चैत्र सुदि नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र था, तब तो मीन के सूर्य्य होने चाहिये; मेष के हो नहीं सकते; पर कुण्डली में मेष के सूर्य्य हैं। अध्यात्म रामायण और अगस्त्य संहिताएँ **'मेषे पूषणि संस्थिते'** न कहकर कहती हैं कि **'मेषे पूषणि सम्प्राप्ते'** (मेष में सूर्य्य के आ जाने पर)। इसका अर्थ यही है कि सूर्य्य मीन के थे, पर मेष पर आ गये। श्रीरामावतार है; इसमें वैसी ग्रहस्थिति रह नहीं सकती, जो किसी मनुष्य के लिये सम्भव हो। अतः अघटितघटना-पटीयसी योगमाया के बल से मीन के १० अंश से सूर्य्य मेष के १० अंश पर हो गये। जितनी गति उनकी एक महीने में होती उतनी तत्क्षण हो गई, और सब ग्रह पीछे छूट गये। श्रीरामावतार के हो जाने पर, सूर्य्यदेव से जो काम निकालना था उसके निकल जाने पर, योगमाया ने उन्हें सब ग्रहों का यथोचित साथ होने के लिये एक महीना ठहरा लिया। इसीलिये कहते हैं कि—

मास दिवस कर दिवस भा, मरमु न जानेउ कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कवन विधि होइ॥

यह भी नहीं कह सकते कि सूर्य्य देव का रुकना या आगे बढ़ जाना नितान्त असम्भव है, और इसका कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता, क्योंकि विभिन्न पुराणों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। स्वयम् वाल्मीकीय रामायण में अनुसूयाजी के दश रात्रियों की एक रात्रि कर देने का वर्णन है। अत्रि जी भगवान् रामचन्द्र से कहते हैं—

देवकार्य्यनिमित्तञ्च यथा सन्त्वरमानया।
दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ।

'हे अनघ रामचन्द्र ! देवताओं के कार्य्य के लिये जिस अनुसूया ने दशरात्रि की एक रात्रि बना दी, वही यह तुम्हारी माता के तुल्य है।' सो क्या दश रात्रि की एक रात्रि बिना सूर्य्य के रुके हो गई, और फिर ग्रहमण्डल में यथोचित स्थान पाने के लिये सूर्य्य की गति में कोई विशेषता न हुई ? और यहाँ तो साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का अवतार होनेवाला था। ऐसे अवसर पर तदनुकूल

स्थिति बनाने के लिये तात्कालिक उलट-फेर किसी ग्रह की गति में हो जाना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है ।

कुछ विद्वानों ने यह मत भी प्रकाशित किया है कि ग्रह की गतियों में सूक्ष्म अन्तर पड़ता ही रहता है, जो काल पाकर बृहत् रूप धारण करता है। श्रीरामावतार हुए कई लाख वर्ष हो गये । सम्भव है कि उस समय मीन के ही सूर्य्य उच्च के रहे होंगे। ऐसा मान लेने से ग्रह-गति में उलट फेर मानने की आवश्यकता नहीं पड़ती । उन महात्माओं की सम्मति का यथेष्ट आदर करते हुए भी, मुझे कहना पड़ता है कि ऐसा मानने से अध्यात्म रामायण और अगस्त्य संहिता का विरोध पड़ता है, जो कि स्पष्ट सूर्य्य के मेष पर आ जाने का उल्लेख करते हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि महर्षि भृगु श्रीराम जन्म कुण्डली का फलादेश कहते समय कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनि, मकर के मङ्गल, वृष के बुध, मेष के सूर्य्य और मीन के शुक्र और केतु के होने का उल्लेख करते हैं। और ऐसी ग्रह-स्थिति को **'वेद सागर योग'** बतलाया है, जिसमें पूर्ण ब्रह्म, स्वयम् कर्त्ता, स्वप्रकाश, निरञ्जन, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, सच्चिदात्मा, गिरा ज्ञानगोतीत का अपनी इच्छा से अवतार होता है ।

इन सब बातों पर विचार करने से उस समय मेष का सूर्य्य मानना ही होगा। अतः **'मास दिवस कर दिवस भा। मरमु न जानेउ कोइ॥ रथ समेत रवि थाकेउ। निसा कवन बिधि होइ॥** इस उक्तिमें बड़ा सार है और सर्वथा माननीय है।

यह प्रश्न भी उठ सकता है कि अवतार तो अनेक हैं, फिर उनमें ऐसा योग क्यों नहीं आता ? इस पर इतना ही कहना है कि अवतारों में भी तारतम्य है। बृहत् पाराशर होरा में कहा गया है कि सभी जीवों में परमात्मा विराजमान हो रहे हैं, और सभी उनमें स्थित हैं; पर गुण-कर्म के भेद से किसी-किसी पदार्थ में परमात्मा का अंश अधिक है, और किसी-किसी में जीवांश का आधिक्य है। अज परमात्मा के अनेक अवतार हैं, उनमें से राम, कृष्ण, नृसिंह और वाराह पूर्णावतार हैं। दूसरे अवतार जीवांशान्वित हैं, यथा—"सर्वेषु चैव जीवेषु परमात्मा विराजते। सर्वं हि तदिदं ब्रह्मन् स्थितं हि परमात्मनि॥ सर्वेषु चैव जीवेषु स्थितं ह्यंशद्वयं कचित्। जीवांशमधिकं तद्वत् परमात्मांशाधिकः कचित्॥

+ + + रामः कृष्णश्च भो विप्र नृसिंहः सूकरस्तथा । एते पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः ॥

उनमें भी श्रीरामावतार सहस्रों अवतारों के तुल्य हैं। अध्यात्म रामायण बतलाता है कि--'अवताराः सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः । तेषां सहस्र सदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः ॥' अतः अवतारों की कुण्डलियों में भेद पड़ना स्वाभाविक है। श्रीरामावतार क्या है, यह रामायणों से ही नहीं मालूम होता, जो कि उनके गुणानुवाद के लिये बने ही हैं; बल्कि वह अलौकिक ग्रहस्थिति बतलाती है जिसका फलादेश महर्षि भृगु ने किया है। पाठकों की जानकारी के लिये हिन्दी अनुवाद सहित फलादेश निम्नलिखित है—

श्रीरामजन्मकुण्डलीयम्

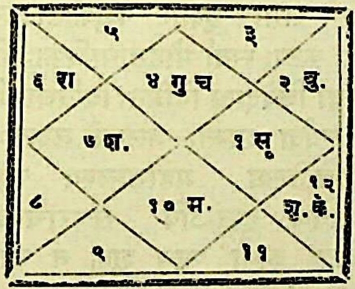

अथ वेदसागर-स्तवः

(पूर्ण त्रिंशत्क्षेपा च) कर्कटे चन्द्रवाक्पतिः ।
कन्यायां सिंहिकापुत्रस्तुलास्थो रविनन्दनः ॥ १ ॥
पाताले मेदिनीपुत्रो वृषस्थश्चन्द्रमासुतः ।
आकाशे मेषभे सूर्य्यः झषस्थौ केतुभार्गवौ ॥ २ ॥
सर्वग्रहानुमानेन योगोऽयं वेदसागरः ।
वेदसागरके जातः पूर्वजन्मनि भार्गव ॥ ३ ॥
पूर्णब्रह्म स्वयं कर्ता स्वप्रकाशो निरञ्जनः ।
निर्गुणो निर्विकल्पश्च निरीहः सच्चिदात्मकः ॥ ४ ॥

गिराज्ञानश्च गोतीत इच्छाकारी स्वरूपधृक् ।
विना घ्राणं सदा घ्राणी विना नेत्रे च वीक्षकः ॥ ५ ॥
अकर्णेन श्रुतं सर्वं गिराहीनश्च भाषितम् ।
करहीनं कृतं सर्वं कर्मादिकं शुभाशुभम् ॥ ६ ॥
पदहीना गतिः सर्वा कुशला सकला क्रिया ।
स्वरूपे रूपहीनश्च समर्थः सर्वकर्मसु ॥ ७ ॥
त्रैविद्यस्त्रिगुणः कालस्त्रिलोकी सचराचरः ।
महेन्द्रो देवताः सर्वा नागकिन्नरपन्नगाः ॥ ८ ॥
सिद्धविद्याधरो यक्षा गन्धर्वाः सकलाः कवे ।
राक्षसा दानवाः सर्वे मानवा वानराण्डजाः ॥ ९ ॥
सागराश्च खगा वृक्षाः पशुकीटादयस्तथा ।
शैला नद्यः कलाः सर्वा मोहमायादिकाः क्रियाः ॥ १० ॥
इच्छा माया त्रिवेदाश्च निर्मिता विविधाः क्रियाः ।
शरण्यः सर्वदा शान्तः अलक्ष्यो लक्षकः सदा ॥ ११ ॥
जरामरणविहीनश्च महाकालस्य चान्तकः ।
सर्वं सर्वेण हीनोऽपि सचराचरदर्शकः ॥ १२ ॥
पूर्वापरक्रिया ज्ञानी शृणु शुक्र न चान्यथा ।
प्रेरितः सर्वदेवैश्च कालान्तरगते कवे ॥ १३ ॥
धरित्री ब्रह्मणो लोके जगाम दुःखपीडिता ।
शिवो ब्रह्मा सुराः सर्वे प्रार्थयाञ्चक्रुतुर्मुहुः ॥ १४ ॥
सुदुःखं वचनं श्रुत्वा देववाणी भवेत् कवे ।
धैर्य्यमाध्वं सुराः सर्वे प्रार्थना सफला भवेत् ॥ १५ ॥
श्रुत्वा हृष्टाः सुराः सर्वे जगाम क्षितिमण्डले ।
नरवानररूपञ्च धृत्वा ब्रह्मेच्छया कवे ॥ १६ ॥
यत्र तत्र सुराः सर्वे हरिदर्शनमानसाः ।
अधर्मनिरतान् लोकान् दृष्ट्वा कष्टेन पीडितान् ॥ १७ ॥
तत इच्छाप्रभावेण गोब्राह्मणसुरार्थकम् ।

मायामानुषरूपेण जगदानन्दहेतवे ॥ १८ ॥
आजगाम धरापृष्ठे कोशलाख्ये महापुरे ।
इक्ष्वाकुवंशे भो शुक्र भूत्वा मानुषरूपधृक् ॥ १९ ॥
सरय्वा दक्षिणे भागे महापुण्ये च क्षेत्रके ।
मधुमासे च धवले नवम्यां भौमवासरे ॥ २० ॥
पुनर्वसौ च सौभाग्ये मातृगर्भात्समुद्भवः ।
मन्मथानां च कोटीनां सुन्दरः सागरोपमः ॥ २१ ॥
श्यामाङ्गं मेघवर्णाभं मृगाक्षं कान्तिमत्परम् ।
भव्याङ्गं भव्यवर्णञ्च सर्वसौन्दर्य्यसागरम् ॥ २२ ॥
सर्वाङ्गेषु मनोहरमतिवलं शान्तमूर्तिं प्रशान्तम् ।
वन्दे लोकाभिरामं मुनिजनसहितं सेव्यमानं शरण्यम् ॥२३॥
कोटिवाक्पतिश्रीमांश्च कोटिभास्करभास्वरः ।
दयाकोटिसागरोऽसौ यशःशीलपराक्रमी ॥ २४ ॥
सर्वसारः सदा शान्तः वेदसारो हि भार्गव ।
दशवर्षसहस्राणि भूतले स्थितिमानसौ ॥ २५ ॥
चतुर्दशसमाः शुक्र अभ्रमच्च वने वने ।
राक्षसानां वधार्थाय दुष्टानां निग्रहाय च ॥ २६ ॥
प्रादुर्भूतो जगन्नाथो मायामानुषवत्कवे ।
अयोध्यानगरे शुक्र बहुवत्सरसहस्रकम् ॥ २७ ॥
नानामुनिगणैर्युक्तो विहरन् धर्मवत्सलः ।
सर्वैं साकं स्वमायाभिरन्तर्धानमियात्कवे ॥ २८ ॥
इच्छया लीलया युक्तः स्वीये लोके वसेत्सदा ।
माया क्रीड़ा पुनर्भूयात् काले काले युगे युगे ॥ २९ ॥
लोकानाञ्च हितार्थाय कलौ चैव विशेषतः ।
पठनाच्छ्रवणात्पुण्यं कल्याणं सततं भवेत् ॥ ३० ॥
निर्भयं नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं न संशयः ।

इति श्रीभृगुसंहितायां श्रीभृगुशुक्रसंवादे षट्त्रिंशतिक्षेपान्तरेवेदसागरफलं समाप्तम् ।

वेदसागरस्तव का हिन्दी अनुवादः—"कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनि, मकर के मङ्गल, वृष के बुध, मेष के सूर्य्य, मीन के शुक्र और केतु—यह वेदसागर-योग है। हे भार्गव, वेदसागर में उत्पन्न होने वाला, पूर्व जन्म में पूर्ण ब्रह्म, स्वयम् कर्ता, स्वप्रकाश, निरञ्जन, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, सच्चिदात्मा, गिराज्ञानगोऽतीत, इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाला था। विना घ्राण के सूँघता था, विना नेत्र के देखता था, विना कान के सुनता था, और विना वाणी के बोलता था। विना हाथ के शुभाशुभ कर्म करता था। विना पैर के चलता था। स्वरूप से रूपहीन होने पर भी सब काय्यों में समर्थ था। वही वेदत्रयी रूप था, त्रिगुण था, काल-रूप भी वही था, चर और अचर तीनों लोक-रूप भी वही था। महेन्द्र, देवता, नाग, किन्नर, पन्नग, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व-रूप भी वही था। राक्षस, दानव, मनुष्य, वन्दर, अण्डज, सागर, पक्षी, वृक्ष, पशु, कीटादिक, पर्वत, नदी—सब उसकी कला हैं, मोहादिक क्रियाएँ हैं। उसने इच्छा, माया, तीनों वेदों और क्रिया कलाप को बनाया।

वह सदा शान्त, शरण्य, अलक्ष्य होने पर भी सदा लक्षक है। वह जरा-मरण-विहीन है और महाकाल का भी काल है। सबसे हीन होने पर भी सब कुछ है, चराचर का दर्शक है। हे शुक्र जी! सुनो वह पहिली पिछली क्रियायों को जानता है, इसमें सन्देह नहीं। हे कवि! पूर्व काल में सब देवताओं से प्रेरित होकर दुःखी पृथ्वी ब्रह्म-लोक को गई। शिवजी ब्रह्माजी तथा सब देवताओं ने बार बार प्रार्थना की। हे कवि! आर्तवाणी सुनकर देव-वाणी हुई—"हे देवताओ! धैर्य्य धारण करो, तुम लोगों की प्रार्थना सफल हुई।" यह सुनकर देवता लोग प्रसन्न होकर पृथ्वीमण्डल में गये। ब्रह्माजी की इच्छा से सब ने वानर का रूप धारण किया, और जहाँ तहाँ हरि दर्शन की लालसा से ठहरे।

संसार को अधर्म में लगे हुए, लोगों को कष्ट से पीड़ित देखकर, इच्छा के प्रभाव से गो-ब्राह्मण और देवता के लिये, माया से मनुष्य रूप धारण करके, जगत् के आनन्द के लिये पृथ्वी पर कोशलपुर में, हे शुक्र! इक्ष्वाकुवंश में, सरयू के दक्षिण भाग में अवतीर्ण हुए। चैत्र सुदि नवमी को मङ्गलवार, पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न हुए—कोटि काम-सी सुन्दरता, मेघ वर्ण, श्यामाङ्ग,

मृगाक्ष, परम कान्तिमान्, भव्याङ्ग, भव्यवर्ण, सभी सुन्दारता के समुद्र, उनके सभी अङ्गों में मनोहरता थी, अति बलवान् थे, शान्त, अति प्रसन्न, लोक को सुख देने वाले मुनिजन के सहित, सेव्यमान और शरण्य की मैं वन्दना करता हूँ। वे करोड़ों वाक्पति के समान श्रीमान् हैं, करोड़ों सूर्य्य के भी सूर्य्य हैं, करोड़ों दया के समुद्रों के समान हैं, बड़े यशस्वी शीलवान् और पराक्रमी हैं। हे भार्गव! वे सर्वसार, सदा शान्त और वेदसार हैं। दश सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर थे। हे शुक्र! चौदह वर्षों तक वन-वन में घूमते रहे। राक्षसों के वध और दुष्टों के निग्रह के लिये माया मानुष रूप से जगन्नाथ का प्रादुर्भाव ही हुआ था। अनेक सहस्र वर्षों तक वे धर्म-वत्सल मुनि लोगों के साथ विहार करते थे। हे कवि! तत्पश्चात् सबके साथ अपनी माया से अन्तर्धान हो गये। इच्छा से लीलायुक्त होकर अपने लोक में सदा बसते हैं। लीला माया से फिर काल पाकर युग-युग में लोक के हित के लिये विशेपतः कलियुग में फिर होवेंगे।

इसके पढ़ने से सुनने से सदा पुण्य और कल्याण होता है, निर्भयता प्राप्त होती है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है।

इति श्रीभृगुसंहितामें भृगुशुक्रसंवादके छत्तीसवें क्षेपान्तरमें वेदसागरफल समाप्त हुआ।"

जन्मकाल की ग्रहस्थिति ही मनुष्य के पूर्व-जन्म का संवाद देती है। उसके भविष्य पर प्रकाश डालती है। उससे ही पता चलता है कि वह मनुष्य क्या है। अतः दिव्य जन्म और दिव्य कर्म वाले परम पुरुष के आविर्भाव के समय ग्रहों की अलौकिकी स्थिति का हो जाना सर्वथा प्राप्त है, और तत्पश्चात् पुनः जीवों के जन्मानुकूलता के लिए पूर्ववत् ग्रह-स्थिति का हो जाना भी पूर्णतः युक्तिसंमत है। अतः—

मास दिवस कर दिवस भा मरमु न जानेउ कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होइ॥

सत्योक्ति है, इसमें सन्देह नहीं। हरिः ॐ तत्सत्।

२

मानस की कुञ्जी

श्री रामचरित मानस के अध्ययन का सौभाग्य जिन्हें गुरुमुख द्वारा प्राप्त नहीं हुआ है, प्रायः उन लोगों के मुख से ऐसी बात सुनी जाती है कि मानस की रचना में ऐसी अव्यवस्था है कि जिसका सामञ्जस्य किसी भाँति नहीं बैठता।

पहिले तो यही निश्चय नहीं होता कि किस कल्प के रामचरित की कथा इसमें है। क्योंकि इसमें चार कल्पों के रामावतार की कथाओं का उल्लेख मिलता है। **पहिले** उस कल्प की कथा का, जिसमें जय विजय, रावण और कुम्भकर्ण हुए थे। **दूसरे** उस कल्प की कथा का, जिसमें जलन्धर रावण हुआ था। **तीसरे** उस कल्प की कथा का, जिसमें दो रुद्रगण रावण और कुम्भकर्ण हुए थे। और **चौथे** उस कल्प की कथा का, जिसमें भानुप्रताप और अरिमर्दन, रावण कुम्भकर्ण हुए थे।

अब यह पता नहीं चलता कि किस कल्प की कथा इस ग्रन्थ में है। यदि कहिये कि पहिले तीन कल्पों की कथाओं को, जिनमें वैकुण्ठनाथ तथा क्षीरशायी भगवान का रामावतार हुआ था, ग्रन्थकार ने अवतार ग्रहण के पृथक्-पृथक् कारणमात्र का निर्देश करके ही छोड़ दियाँ, केवल चौथे कल्प की कथा लिखी, जिसमें ब्रह्म का रामावतार हुआ था। तब प्रश्न यह उठता है कि चौथे कल्प की कथा में पहिले तीन कल्पों के अवतार ग्रहण के कारणों के उल्लेख का कारण क्या है? उन कल्पों के कथा-खण्ड उसमें व्यर्थ ही क्यों ठूँस दिये गये?

जैसे अरण्य काण्ड के अन्त में नारद जी का आगमन और उनके द्वारा यह पूछा जाना कि—'पहिले मैंने ब्याह करना चाहा था, तो आपने क्यों नहीं

करने दिया', स्पष्टरूप से सिद्ध करता है, कि यह कथा तीसरे कल्प की है। और लङ्का कांण्ड में माल्यवंत का यह कहना कि—

हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान।
जिन्ह मारेउ सोइ अवतरेउ, कृपासिंधु भगवान॥

स्पष्ट बतलाये देता है कि यह कथा पहिले कल्प की है। इसी भाँति बालकाण्ड में ब्रह्मदेव की स्तुति के बाद जो आकाश वाणी हुई, उसमें कहा गया कि—

कश्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन कहँ मैं पूरब वर दीन्हा॥
ते दशरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा॥
तिनके गृह अवतरिहौं जाई। अंशन्ह सहित सो चारिउ भाई॥

इससे सिद्ध होता है कि यह चौथे कल्प की कथा न होकर पहिले कल्प की है, और साथ ही साथ यह भी कहा गया है, कि—

नारद बचन सत्य सब करिहौं। परम शक्ति समेत अवतरिहौं॥

इससे सिद्ध होता है कि यह कथा पहिले या चौथे कल्प की न होकर तीसरे कल्प की है।

अब प्रश्न यह है कि चौथे कल्प की आकाश-वाणी में, भिन्न-भिन्न दो दूसरे कल्पों की आकाश-वाणियाँ कहाँ से आईं, और जिस कल्प की कथा चल रही है, उसकी आकाश-वाणी की चर्चा क्यों नहीं है?

इतना ही नहीं, कथा-भाग के बीच बीच में कहीं उमा, कहीं गरुड, कहीं भरद्वाज सम्बोधन आया है, जिससे यह भी निर्णय नहीं होता कि आखिर इस कथा का श्रोता कौन है? पूरे अयोध्या काण्ड में कहीं भी उमा या गरुड सम्बोधन नहीं आया, अन्य काण्डों में आया है। इसका भी कारण होना चाहिये, और अन्यूनातिरिक्त चार ही कल्पों की कथाओं के कथन का भी कारण होना चाहिये।

इसका सामञ्जस्य विठाने के लिये कुछ लोगों का कथन है कि ग्रन्थकार ने पहिले अयोध्या काण्ड की रचना की, और पीछे से शेष काण्डों को बनाया। चौथे कल्प में ब्रह्म के रामावतार ग्रहण की बात है। ब्रह्म में विष्णु का अन्तर्भाव है, इसलिये उनकी कथा में विष्णु भगवान् के तीनों अवतारों की कथाओं का अन्तर्भाव हो सकता है। कहना नहीं होगा कि ये युक्तियाँ कितनी दुर्बल हैं।

ब्रह्म में तो सभी का अन्तर्भाव है। विष्णु का अन्तर्भाव मानने में कोई विशेषता नहीं है। इस न्याय से तो रावण का भी ब्रह्म में अन्तर्भाव हो जाता है, पर रावण के कृत्य को तो राम का किया हुआ नहीं माना जा सकता। यदि मान भी लें कि ब्रह्म में विष्णु भगवान का अन्तर्भाव है, तौभी यह कैसे माना जा सकता है कि विष्णु के पूर्वरूपों के किये हुए कर्मों के भोगने के लिए साक्षात् ब्रह्म चले आये। अतः गोरखधन्धा बना ही रह गया, सामञ्जस्य न बैठ सका।

एक बात सबसे अद्भुत है कि यहाँ परम्परा में ही गोलमाल है। एक स्थल में कहा जाता है कि मानस को याज्ञवल्क्य मुनि ने भुसुण्डि से पाया, और भुसुण्डि ने शिवजी से पाया, और दूसरे स्थल में कहते हैं कि भुसुण्डि ने लोमश ऋषि से पाया और शिवजी ने भुसुण्डि से सुना, यथा—

मैं कछु काल मराल तन, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलास॥

अतः सिद्ध है कि परम्परा में भी एकवाक्यता नहीं है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि ग्रन्थ के सिद्धान्त का भी पता नहीं चलता। कहीं कहते हैं—**"सो तैं तोहि ताहि नहिं भेदा"** तथा **"सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुमहिं तुमहि होई जाई॥"** और कहीं कहते हैं कि—**"सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।"**

फल यह हो रहा है कि द्वैतवादी और अद्वैतवादी का शास्त्रार्थ चला करता है और निर्णय ही नहीं हो पाता कि इस ग्रन्थ का सिद्धान्त क्या है? अतः लाचार होकर इस निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि इस ग्रन्थ में ऐसी अव्यवस्था है, ऐसा गोलमाल है, ऐसी उलझन है, जो सुलझ नहीं सकती।

परन्तु जिसने गुरुमुख से श्रीरामचरित का अध्ययन किया है या सत्सङ्ग द्वारा मानस का मर्म जान पाया है, और स्वयम् मनन भी किया है, उसे ग्रन्थ में कोई असामञ्जस्य नहीं दिखाई पड़ता।

यद्यपि मैंने गुरु-चरणों से बहुत थोड़ा ही अध्ययन किया है, और सत्सङ्ग से भी यथेष्ट लाभ नहीं उठा पाया है; मैं मानस के अन्वेषण विभाग का एक छात्र-मात्र हूँ, फिर भी, अपनी बुद्धि के अनुसार मुझे असामञ्जस्य नहीं मालूम होता। अतः जिस प्रकार से इसका सामञ्जस्य मेरे मन में बैठा हुआ है, उसे अपने से छोटे भाइयों की जानकारी के लिए लिपिबद्ध किये देता हूँ।

मेरी जानकारी

चार साधन—शास्त्रों में परलोक के सँवारने के तीन उपाय बतलाये गये हैं (१) कर्म (२) भक्ति और (३) ज्ञान। चौथा एक उपाय और है जिसे [१]शरणागति या दीनता कहते हैं। यह भक्ति का ही अङ्ग है, पर इससे उसकी भी बिगड़ी सुधरती है जिसका किया कुछ नहीं होता। अतः इसे चौथा उपाय माना गया है। श्री गोस्वामी जी स्वयं अपने को चौथी श्रेणी का ही अधिकारी मानते थे, यथा—

कर्मठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञानविहीन।
तुलसी त्रिपथ विहाइगो, रामदुआरे दीन॥

श्रीरामचरित से वेदार्थ ज्ञान—वेदादि शास्त्र अत्यन्त गम्भीर हैं, उनके अर्थ को सर्वज्ञकल्प महर्षि ही समझ सकते हैं, अल्पश्रुत से तो वेद डरता है कि मुझपर प्रहार करेगा। इसलिए परम कारुणिक शिवजी ने जीवों के कल्याण के लिए [२]अनन्त रामावतारों में से चार ऐसे चुने, जिनके यशोवर्णन द्वारा चारों

---

१ अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगतिः। त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थना मतिः। शरणागतिरित्युक्ता तद्देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम्॥ अहिर्बुध्न्यसंहितायाम्

२ कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारुचरित नाना विधि करहीं॥ हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।

साधनों की उपयोगिता दिखाई जा सके और सम्पूर्ण वेदार्थ के दर्शन के लिये उदाहरण खड़ा हो जाय। तदनुसार शिवजी ने अपने मानस की रचना की।

मानस नामकरण का कारण—मानस सरोवर सा सुन्दर उसे देखकर उसका [1]नाम श्री रामचरित मानस रखा। वह मानसर की भाँति दुर्गम भी था, केवल महामेधावी देवता ऋषि के उपयोग योग्य था, न तो उसमें सम्वाद रूपी घाट थे, न काण्ड रूपी सोपान-विभाग था, यथा—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्।

अस्मदादिक के लिये भारी दुर्गम था। क्योंकि—

उमा राम गुण गूढ़, पण्डित मुनि पावहिं विरति।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धर्मरति॥

मानस की परम्परा—उसे महर्षि लोमश द्वारा शिवजी ने भुसुण्डि को दिया। यथा—

सादर मोहिं यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सोहाई॥
राम चरित सर गुप्त सोहावा। शंभु प्रसाद तात मैं पावा।
तोहि निज भगत राम कै जानी। ताते मैं सब कहा बखानी॥

अब यहाँ यह बात खुल गई कि किस भाँति शिवजी ने भुसुण्डि को **दिया**। शिवजी की प्रेरणा से उनके गुरु लोमश ऋषि ने उन्हें **सुनाया**। इसलिये शिवजी का देना कहा, और लोमश जी का **सुनाना** कहा। जहाँ शिवजी प्रत्यक्ष कहते हैं, वहाँ देना न कहकर **कहना** कहते हैं, यथा—"पाइ सुसमय शिवासन भाखा।"

इसी भाँति याज्ञवल्क्यजी ने भी शिवजी से ही पाया। सूर्य्यनारायण से ही उनकी विद्या-प्राप्ति प्रसिद्ध है, जो कि शिवजी की अष्ट मूर्तियों में से ईशान मूर्ति हैं। याज्ञवल्क्यजी ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं विद्या ग्रहण देवता से ही करूँगा—मनुष्य से नहीं करूँगा।

---

१ ताते रामचरित मानसवर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर॥

याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाज को सुनाई, यथा—**"जागवलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई ॥"** इन लोगों ने उस मानस को सम्यक् रूप से ग्रहण किया। बुद्धिमालिन्य तथा **इन्द्रियापाटव**जन्य दोषों का स्पर्श न हो सका, क्योंकि वे श्रोता वक्ता समशील थे, हरिलीला के जानकार थे। तीनों काल का ज्ञान उन्हें हस्तामलक था।

इसके बाद जो परम्परा चली, वह इस बात को निबाह न सकी। इन्द्रिय और बुद्धि दोष से मानस का सम्यक् रूप से ग्रहण न हो सका। अतः उसमें नानात्व आ गया, यथा—

औरउ जे हरि भगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥

फिर भी परम्परा चल पड़ी, और ग्रन्थकार के गुरुजी तक बराबर चली आई। गुरुजी इस कथा को कहा करते थे और जानकार मण्डली उसे सुनती थी। शिवजी ने जो भुसुण्डिजी से सुना वह परम्परा की बात नहीं है। शिवजी द्वारा पाये हुए मानस की कथा भुसुण्डि जी अन्य पक्षियों से पक्षी-भाषा में नीलगिरि पर कह रहे थे। दैवात् वहाँ शिवजी का पधारना हुआ। इस कौतुक को देखकर कथा-रसिक शिवजी ने मराल-रूप धारण कर लिया, और पक्षी-श्रोताओं में जा मिले। अपने स्वरूप में जाने पर भुसुण्डि जी को बड़ा संकोच होता, इसलिये शिवजी ने अपने को छिपा कर कथा सुनी। यह बात शिवजी की कथारसिकता द्योतित करती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि शिवजी को कथा ज्ञात नहीं थी, भुसुण्डि जी से उसका ज्ञान प्राप्त हुआ।

गोस्वामीजी का मानस—जब ग्रन्थकार के गुरुजी कथा कहा करते थे, तब गोस्वामी जी का बालपन था। इसलिये समझने में अधिक कठिनाई पड़ी। इस कठिनाई को दूर करने के लिये दयामय गुरुजी ने इन्हें बार बार सुनाया, तब बातें कुछ समझ में आईं। इस भाँति श्री गोस्वामीजी का मानस तैयार हुआ, परन्तु गोस्वामी जी उन भक्तों में थे जो रामचरित सुनते अघाते नहीं। यथा—

सुमति भूमिथल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू ॥

बरखहिं रामचरित वर वारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥
मेधा महिगत भो जल पावन। सिकिलि श्रवण मग चलेउ सोहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

अवतार का कारण—इस भाँति ग्रन्थकार का मानस भर उठा और मनन निदिध्यासन करते करते विषय अभ्रान्त हो गया। देखा कि अवतार के कारणों में साधु-परित्राण ही मुख्य है, दुष्कृतों का विनाश तथा धर्म का संस्थापन उसी के अन्तर्गत है। भगवान स्वयं कहते हैं कि—

तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरौं देह नहिं आन निहोरे॥

मानस में चार अवतार—साधु परित्राण भी चार प्रकार से होता है—(१) अनन्य शरण के उद्धार से (२) साधु के वचन को सत्य कर दिखाने से (३) उनके न चाहने पर भी उनके वचन को प्रमाण करने से और (४) भक्त के मनोरथ को पूर्ण करने से। ये चारों बातें भी चारो कल्प की कथाओं में पृथक् पृथक् दिखलाई गई हैं।

(मानस वस्तुतः सोदाहरण भक्ति शास्त्र है। इसमें सगुणोपासक को **भक्त** और निर्गुणोपासक को **ज्ञानी** माना गया है)।

१—जय और विजय हरि के द्वारपाल होने से अनन्य शरण थे। उनके उद्धार के लिए वैकुण्ठनाथ ने चार जन्म (बराह, नृसिंह, राम तथा कृष्ण) ग्रहण करके **दैन्य का माहात्म्य** दिखलाया और प्रथम प्रकार से साधु-संरक्षण किया।

२—जलन्धर की स्त्री साध्वी थीं। उसके शाप को प्रमाण मानकर, विष्णु भगवान ने धर्म की महिमा द्योतित की (और साथ ही साथ यह भी दिखलाया कि स्त्री की साधुता उसके सतीत्व में है) एवम् दूसरे प्रकार से साधु संरक्षण किया।

३—नारद जी सगुणोपासक थे। इनके न चाहने पर भी क्षीरशायी प्रभु ने इनके शाप को अङ्गीकार कर के भक्ति की महिमा दिखलाई, और तीसरे प्रकार से साधु-संरक्षण किया।

४—स्वायम्भू मनु **ज्ञानी** भक्त थे। यथा—

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥

इनका मनोरथ पूर्ण करके सच्चिदानन्द ब्रह्म ने **ज्ञान की महिमा** दिखलाई, और चौथे प्रकार से साधु-संरक्षण किया। अन्यूनातिरिक्त चार अवतार के चुनाव के ये ही कारण हैं।

भाषाबद्ध के लिये संकल्प—मनन करते-करते ग्रन्थकार के मन में यह भावना उठी कि यदि मैं इस मानस को भाषाबद्ध कर सकूँ, तब विश्वास हो कि मैंने ठीक-ठीक समझ पाया है। यथा—

भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे हिय प्रबोध जेहि होई॥

अब मानस की रचना लोक-भाषा में प्रारम्भ हुई।

घाट की योजना—पूर्वकाल में जिन कठिनाइयों का सामना ग्रन्थकार को करना पड़ा था, उन्हें स्मरण करके, उनके मन में यह बात आई कि इसे ऐसी रीति से लिखना चाहिये, जिसमें पाठक के हृदयङ्गम होने में कठिनता न पड़े; दैन्य, कर्म, भक्ति और ज्ञान के भावों से युक्त समग्र मानस मन में आ जाय; अवतार की घटनाएँ क्रमबद्ध हो जायँ और कथा को बार-बार दोहराना न पड़े। अतः भलीभाँति विचार करके ग्रन्थकार ने निश्चय किया कि इस मानस के रूपक में यदि घाट बाँधने का और सोपान-विभाग का भी रूपक जोड़ दिया जाय तो ईप्सित प्रयोजन की सिद्धि हो सकती है। यथा—

सुठि सुंदर संवादवर, बिरचेउ बुद्धि बिचारि।
ते एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥

अतः ग्रन्थकार ने मानस में दीनघाट, कर्मघाट, ज्ञानघाट तथा उपासना-घाट के नाम से चार घाट बाँधे। घटनाओं को क्रमबद्ध करके सात सोपान बनाये, जिनमें प्रसङ्गरूपी फलक लगाये। इस भाँति चारो घाटों से सातो सोपानों द्वारा सीयरामयश-सलिल तक पहुँचना सुसाध्य हो गया।

चारो घाट के वक्ता—यद्यपि सभी वक्ताओं ने चारो कल्पों की कथाएँ कहीं, फिर भी सुभीते के लिये श्री गोस्वामीजी ने तीन कल्प की कथाओं को तीनों वक्ताओं में बाँट दिया। स्वयम् दीनघाट के वक्ता बने और तदनुसार प्रथम कल्प की कथा की अपने भाग में कल्पना किया। याज्ञवल्क्यजी को कर्मघाट का वक्ता बनाया, और दूसरे कल्प की कथा को इनके भाग में कल्पित किया। शिवजी को ज्ञानघाट का वक्ता बनाया और उनके भाग में चौथे कल्प की कथा की कल्पना की, तथा भुसुण्डिजी को उपासना घाट का वक्ता बनाया और उनके भाग में तीसरे कल्प की कथा की कल्पना की, क्योंकि गोस्वामीजी अपने को दीन, याज्ञवल्क्यजी को कर्मठ, शिवजी को ज्ञानो भक्त और नारदजी को सगुणोपासक मानते थे। याज्ञवल्क्यजी को कर्मठ मानने का कारण यह है, कि ये महात्मा महा ज्ञानी होने पर भी कर्मनिष्ठ थे। मकर में कल्पवास करने के लिये प्रयागराज जाते थे। इन सम्वादरूपी घाट की कल्पना से विषय-निरूपण में बड़ी सुविधा हुई।

घाट का क्रम—ग्रन्थकार को मानस की प्राप्ति याज्ञवल्क्य मुनि की परम्परा से हुई। मुनिजी को शिवजी की ईशान मूर्त्ति से हुई, और शिवजी स्वयं आदर की दृष्टि से भुसुण्डिजी के श्रोता बने। अतः दीनघाट पूर्व में पड़ा, तत्पश्चात् प्रदक्षिण क्रम से कर्मघाट दक्षिण में, ज्ञानघाट पश्चिम में और उपासनाघाट उत्तर में पड़ा।

१ दीनघाट—इस घाट में ग्रन्थकार ने अपने मन को तथा सज्जनों को श्रोता बनाया। इसमें (१) चारो घाटों, चरित्र विभागों तथा गुण-ग्रामों की फलश्रुति (२) देश-काल संकीर्तनपूर्वक ग्रन्थ-रचना का संकल्प (३) तथा अपने मानस के मानचित्र को दीनघाट की भूमिका बनाया। उसके बाद घाट प्रारम्भ हुआ, जिसमें प्रथम कल्प की कथा है। वैकुण्ठनाथ का रामावतार धारण करना, कश्यप अदिति का दशरथ कौसल्या होना, हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष का रावण कुम्भकर्ण होना तथा शङ्कर को शिर चढ़ाने से सिद्धि की प्राप्ति वर्णित है। यथा—

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजे अमित बार त्रिपुरारी॥

(पूर्व-जन्म में अर्थात् हिरण्यकश्यप रूप में भी इसने प्राण देकर ही सिद्धि प्राप्त की थी। जब ब्रह्मदेव वर देने गये तब उसके शरीर के स्थान में मिट्टी का ढेर देखा)।

२ **कर्मघाट**—इस घाट में याज्ञवल्क्य-भरद्वाज सम्वाद है, जिसमें भरद्वाजजी के प्रश्न तथा उमा-शम्भु चरित्र का वर्णन कर्मघाट की भूमिका है। इसके बाद घाट प्रारम्भ हुआ जिसमें द्वितीय कल्प की कथा है। इसमें विष्णु क्षीरशायी भगवान का रामावतार धारण, कश्यप-अदिति का दशरथ-कौशल्या होना, जलन्धर का रावण होना तथा कर्म से सिद्धि-प्राप्ति का वर्णन है। यथा—**सिव बिरंचि पूजे बहु भाँती**। (पूर्व जन्म में भी इसे कर्मकाण्ड से ही सिद्धि प्राप्त हुई थी। यथा—**परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी ॥**)

३ **ज्ञानघाट**—इसमें शिव-पार्वती सम्वाद है। इसमें उमा का प्रश्न **"राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई॥"** और इसका उत्तर ज्ञानघाट की भूमिका है। इसके बाद ज्ञानघाट प्रारम्भ हुआ। इसमें चौथे कल्प की कथा है, जिसमें साक्षात् ब्रह्म का रामावतार धारण करना, स्वायम्भू मनु और शतरूपा का दशरथ-कौसल्या होना, भानुप्रताप का रावण होना तथा क्रियायोग[1] वर्णित है। यह रावण पूर्वजन्म में भी कर्म-योगी था। यथा—

जो कछु करइ कर्म मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी ॥

इस जन्म में भी योगी हुआ। यथा—**"नाभी कुण्ड सुधा बस याके"** (यह सिद्धि योग द्वारा हुई)।

४ **उपासनाघाट**—इस घाट में भुसुण्डि-गरुड़ सम्वाद है। इसमें उमा के प्रश्न—

(यह प्रभु चरित पवित्र सोहावा। कहहु कृपाल काक कह पावा ॥
तुम केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी ॥

१ तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि क्रिया योगाः।

गरुड़ महा ज्ञानी गुणरासी । हरि सेवक अति निकट निवासी ॥
सो केहि हेतु काक सन जाई । सुनी कथा मुनि निकर विहाई ॥)

का उत्तर जो उत्तर काण्ड में दिया गया है, उपासना घाट की भूमिका है। इसके बाद उपासना घाट आरम्भ हुआ, जिसमें तीसरे कल्प की कथा है। इसमें नारद-शाप से भगवान् क्षीरशायी का रामावतार धारण करना और दो रुद्रगणों का रावण कुम्भकर्ण होना वर्णित है। यह रावण शक्ति का उपासक था। यथा—"**सुनत वचन दशसीस रिसाना। मन महँ चरन वंदि सुख माना॥**" तथा–"**एहि के हृदय वस जानकी मम जानकी उर बास है।**" (पूर्वजन्म में भी इसका उपासक होना रुद्रगण होने से स्पष्ट है।)

इस भाँति निर्गुण-सगुण ब्रह्म के यश से भरा हुआ यह मानस साङ्गोपाङ्ग सुन्दर बना। तत्पश्चात् ग्रन्थकार ने मन की आँखों से इस नवनिर्मित अलौकिक मानस का निरीक्षण किया, तो बुद्धि प्रसन्न हो गई, हृदय में आनन्द का उछाह उमड़ पड़ा और पूर्वघाट से सरयू काव्यरूपी नदी बह निकली। यथा—

सरयू काव्य में चारो कथाएँ—

अस मानस मानस चख चाही । भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही ॥
भयउ हृदय आनन्द उछाहू । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥
चली सुभग कविता सरिता सों । राम विमल जस जल भरिता सों ॥
सरजू नाम सुमंगल मूला । लोक वेद विधि मंजुल कूला ॥

तब तो यह मानस-नन्दिनी सरयू दुर्गम पहाड़ों को चीरती हुई खुले मैदान बह चलीं। मानस का जल सबको अनायास सुलभ हो गया। साधु-समाज-रूपी अवध में पहुँच कर उसका योग भक्ति-गङ्गा से हो गया। उधर दक्षिण से सानुज राम-समर-यशरूपी महानद शोण आ मिला, त्रिविध ताप त्रासक तिरमोहानी हो गई। इस भाँति बहती हुई रामस्वरूप-सिन्धु में जा मिली। अब चारो घाट के यात्रियों के लिये राम-स्वरूप सिन्धु तक पहुँचने का मार्ग निरर्गल हो गया।

कथाओं का पृथक्करण—ध्यान देने योग्य बात है कि सरयू काव्यरूपी नदी के उद्गम से लेकर रामस्वरूप सिन्धु से मिलन तक चारो कल्प की कथाएँ एक में मिली हुई हैं। फिर भी ग्रन्थकार ने ऐसी युक्ति से लिखा है कि थोड़ा सा ध्यान देने से चारो कल्पों की कथाएँ पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होती हैं और वे अथ से इति तक अलग की जा सकती हैं।

कथाओं का पृथक्करण—अलग करने में कोई कठिनता नहीं है। तीन कल्पों की कथाओं की विशेषताओं को हटा देने से चौथे कल्प की कथा निकल आती है। यदि दूसरे-तीसरे और चौथे कल्प की विशेषताएँ हटा दी जायँ तो पहिले कल्प के रामावतार की कथा साङ्गोपाङ्ग निकल पड़ेगी। इसी भाँति पहिले, तीसरे और चौथे कल्पों की विशेषताओं को हटा देने से दूसरे कल्प की कथा निकल पड़ेगी तथा पहिले दूसरे और चौथे कल्प की विशेषताओं के दूर करने से तीसरे कल्प की कथा निकल आवेगी और पहिले, दूसरे और तीसरे कल्प की विशेषताओं को दूर करने से चौथे कल्प की कथा निकल पड़ेगी।

कारण यह है कि बहुत अधिक कथा-भाग तो सभी कल्पों में समान है। सभी कल्पों में रामनवमी को अयोध्या में महाराज दशरथ के घर में ही रामजन्म होगा। धनुष-भङ्ग-पूर्वक जानकीजी से ही विवाह होगा। कैकेयी के ही वरदान माँगने से राम-वनवास होगा। सीता-हरण होगा। सुग्रीव मिताई होगी। रावण-वध होगा। ये सब कथाएँ समान ही हैं। फिर भी सभी कल्पों की विशेषताएँ हैं, जिनका ध्यान रखना, कथा के पृथक् करने में नितान्त आवश्यक है। अतः संक्षेप में उनका दिग्दर्शन करा दिया जाता है।

घाटों की विशेषताएँ

१—पूर्वघाट की कथाओं की विशेषताएँ—

कश्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन कहँ मैं पूरब वर दीन्हा॥
ते दशरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा॥
तिनके गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

ऐसी आकाशवाणी का होना (२) इस कल्प की मन्दोदरी का रावण को, सरकार के लङ्का पधारने का समाचार सुनकर, समझाना (३) इस कल्प में जय और विजय का विप्र-शाप से रावण कुम्भकर्ण होना, तथा वैकुण्ठनाथ का केवल करुणावश रामावतार धारण करना, (४) ब्रह्मशाप के कारण रावण कुम्भकर्ण का, मुक्ति न होकर, पुनः जन्म-ग्रहण करना, (५) श्रोता वक्ता का मनुष्य होना और कथा का लौकिक भाषा में होना तथा और भी ऐसे ही बातें। (६) इस कथा का अन्त तक चला जाना।

२—दक्षिणघाट की कथा की विशेषताएँ—

(१) **अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लैहौं दिनकर बंस उदारा॥** ऐसी आकाशवाणी का होना, (२) इस कल्प की मन्दोदरी का रावण को लङ्का-दाह के बाद ही समझाना, (३) इस कल्प के रामजी का ही शापित होना, (४) इस कल्प के रावण को परम-पद की प्राप्ति, (५) वक्ता-श्रोता दोनों का ऋषि होना; कथा का देववाणी में होना तथा और भी ऐसी बातें। (६) इस कथा का **'राम उपासक जे जग माँहीं। येहि सम प्रिय तिनकहँ कछु नाहीं॥'** (१-६-३) तक चला जाना।

३—पश्चिमघाट की कथा की विशेषताएँ—

(१) **जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुमहि लागि धरिहौं नरवेषा॥** ऐसी आकाशवाणी का होना, (२) इस कल्प की मन्दोदरी का मुकुट ताटंक गिरने पर रावण को समझाना, (३) इस कल्प में रावण, कुंभकर्ण, विभीषण—तीनों का शापित होना, (४) विभीषण के मर्म बतलाने पर नाभि में वाण लगने से रावण का मारा जाना तथा सायुज्य पाना, (५) वक्ता श्रोता दोनों का देवता होना, कथा का देववाणी में होना तथा ऐसी ही और बातें। (६) इस कथा का **"मैं कृतकृत्य भयेउँ अब, तव प्रसाद विश्वेस। रामभक्ति दृढ़ ऊपजी, बीते सकल कलेस॥"** उत्तरकाण्ड दो० १२६ तक चला जाना।

४—उत्तरघाटकी कथा की विशेषताएँ—

(१) नारद बचन सत्य सब करिहौं। परम शक्ति समेत अवतरिहौं॥
हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

ऐसी आकाशवाणी का होना, (२) आरण्यकाण्ड में नारद और प्रभु का सम्वाद होना, (३) इस कल्प की मन्दोदरी का अङ्गद-सम्वाद के बाद समझाना, (४) इस कल्प के राम, रावण और कुम्भकर्ण तीनों का शापित होना, (५) हृदय में बाण लगने से मर कर रावण का आवागमन से छुटकारा पाना, (६) श्रोता वक्ता दोनों का पक्षी होना, तथा पक्षी-भाषा में सम्वाद होना तथा ऐसी और बातें। (७) इस सम्वाद का **"तासु चरण सिर नाइ कर, प्रेम सहित मतिधीर। गयउ गरुड़ वैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुवीर"॥** (उत्तर काण्ड दो० १२५) तक चला जाना।

चारो कल्पों की मन्दोदरी—प्रथम कल्प की मन्दोदरी समझाने के समय स्पष्ट ही हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष की चर्चा करती है। दूसरे कल्प की मन्दोदरी समझाती है कि **"हित न तुम्हार संभु अज कीन्हे।"** भावार्थ यह है कि तुमने बहुत भाँति से शम्भु-अज की पूजा की है। वे भी तुम्हारा कल्याण न कर सकेंगे। इस भाँति कर्मघाट की कथा का सङ्केत मिलता है। तीसरे कल्प की मन्दोदरी स्पष्ट ही भजन का उपदेश देती है। चौथे कल्प की मन्दोदरी विश्वरूप का निरूपण करती है। इस भाँति ज्ञानघाट की कथा का सङ्केत मिलता है। इस भाँति घाटों पर ध्यान देने से चारो कल्पों की मन्दोदरियों का पृथक्-पृथक् पहिचान हो जाती है। चारो कल्पों के रावणों की पहिचान पहिले कह आये हैं। ये सब बातें ग्रन्थकर्ता के संवादरूपी चारो घाटों के बाँधने से ही लखाई पड़ सकीं।

अतः स्पष्ट है कि चारों कल्पों के रामावतारों की पूरी कथाएँ श्री रामचरित मानस में हैं। शिवजी इसके आदिवक्ता हैं। उन्हीं से मानस की परम्परा चली, जो श्री गोस्वामीजी तक चली आई और उन्होंने उसे भाषा में लिपिबद्ध किया।

प्रबन्ध की विचित्रता—श्री ग्रन्थकार का कथा-प्रबन्ध वस्तुतः ऐसा विचित्र है कि ऐसा अन्यत्र नहीं पाया जाता। स्वयं ग्रन्थकार ही ने लिखा है कि **"सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई॥"**

इसका भी कारण है क्योंकि अन्य रीति से चारो कल्पों की कथाएँ सुगमतापूर्वक कही नहीं जा सकती थीं।

सम्बोधन-रहस्य—अब सम्बोधन के विषय में यह कहना है कि रावण-जन्म की कथा के पहिले ही भरद्वाजजी का शङ्का-समाधान पूरी तरह से हो चुका था। अतः शेष कथा में याज्ञवल्क्यजी को अपने श्रोता को सावधान करने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ी। अतः **"काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥"** कहने के बाद ग्रन्थ भर में कहीं भरद्वाज या मुनि सम्बोधन नहीं है। उमा, गिरिजा आदि सम्बोधन शिवजी के उत्तर से ही प्रारम्भ हो जाता है। राम-जन्म से चित्रकूट-निवास तक बड़ी सरल कथा है। इसमें शङ्का को स्थान नहीं है। शिवजी तथा भुसुण्डिजी ने अपने श्रोताओं को सावधान करने की आवश्यकता नहीं समझी। अतः उन्हें सम्बोधन करके सावधान भी नहीं किया।

श्री गोस्वामी जी अपने को कलिमल-ग्रसित विमूढ़ कहते हैं। अतः अपने मन को बार-बार सम्पूर्ण ग्रन्थ में सावधान करते चले जाते हैं।

आरण्यकाण्ड के चरित में ही सती को मोह हुआ था। अतः उसके आरम्भ होते ही 'उमा' सम्बोधन आता है। भुसुण्डिजी ने भी वहीं से अपने श्रोता को सावधान करना उचित समझा। अतः उन्होंने भी यथावसर गरुड़जी को सावधान करना प्रारम्भ कर दिया।

ग्रन्थ का सिद्धान्त—अब रह गई सिद्धान्त की बात। इस विषय में इतना ही कहना है कि श्री गोस्वामीजी को सभी वैदिकवाद अधिकारी-भेद से मान्य हैं। प्राचीन काल से यह नियम चला आता है कि ग्रन्थकार अपने सिद्धान्त को मङ्गलाचरण में ही कह देते हैं। इसी प्रथा के अनुसार श्री गोस्वामी-जी ने भी इष्ट-देवता को नमस्कार करते हुए एक ही श्लोक में अपना सिद्धान्त

तथा अभिमत-साधन कह दिया। उसी पर विचार करने से उनका सिद्धान्त स्पष्ट हो जाता है। श्लोक के पूर्वार्ध में सिद्धान्त का वर्णन है। यथा—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः।
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः॥

अर्थ—जिसकी माया का वशवर्ती सम्पूर्ण विश्व है, ब्रह्मादिक देवता और असुरलोग हैं, जिसकी सत्ता से सब सच्चा ही प्रतीत होता है, जैसे रज्जु में सर्प का भ्रम।

ग्रन्थ के ही द्वारा ग्रन्थ के लगाने से ग्रन्थकार के तात्पर्य्य का यथार्थ बोध होता है।

जगत का मायामयत्व—अब माया क्या है इसको ग्रन्थ में ही देखिये।

मै अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

इस भाँति से दो प्रकार की माया को ग्रन्थकार ने माना। एक "मैं और मेरा तथा तैं और तेरा" यह माया है, जिसके वशवर्ती जीवमात्र हैं; ब्रह्मादिक देवता और असुर भी हैं। दूसरी माया यह सम्पूर्ण जगत है—जहाँतक मन की दौड है वह सब माया है।

आबाल गोपाल झूठ को ही माया कहते हैं। यह सब माया है अर्थात् यह सब मिथ्या है। 'कादाचित्क' होने से मिथ्या है क्योंकि सुषुप्ति और मूर्छा में इसका बाध देखा जाता है।

ग्रन्थकार स्वयम् कहते हैं कि इनका सच्चा भासना भ्रम है। परन्तु भ्रम भी बिना अधिष्ठान के नहीं होता। रस्सी अधिष्ठान-रूप में वर्तमान है, तभी सर्प का भ्रम होता है। रस्सी के सच्चे होने से सर्प सच्चा भासित होता है। नहीं तो रस्सी में सर्प तीन काल में भी नहीं है। इसी भाँति यह सब ब्रह्म राम की सत्ता से सत्य मालूम होता है, नहीं तो इस परिवर्तनशील जगत में सत्यता कहाँ? यथा—

'यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः'

केवल दीनघाट के वक्ता ग्रन्थकार का ही यह सिद्धान्त नहीं है। ज्ञानघाट के वक्ता शिवजी भी ऐसी ही वन्दना करते हैं। यथा—

झूठहू सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाई हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

तथा गिरिजा को समझाते हुए कहते हैं—

जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहु कालमह, भ्रम न सकै कोउ टारि॥
एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥

कर्मघाट के वक्ता याज्ञवल्क्यजी का भी यही सिद्धान्त है। क्योंकि वे अपने श्रोता के भ्रमापनोदन के लिये यही शिव-पार्वती सम्वाद कह रहे हैं।

अब उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी का भी सिद्धान्त सुनिये। वे कहते हैं—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड॥
सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहौं पद रोपि॥

इस भाँति चारो घाट के वक्ताओं का इस विषय में एकमत है कि यह संसार मिथ्या है, माया मिथ्या है, इसका अधिष्ठान रामब्रह्म सत्य है। उसी के ज्ञान से यह संसार-भ्रम मिट जाता है, जैसे जागने से स्वप्न का भ्रम मिट जाता है। यही अद्वैतवाद है जिसे ज्ञान-सिद्धान्त कहते हैं।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ग्रन्थकार किसी मत के पक्षपाती हैं। जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि श्री गोस्वामीजी को सभी वैदिक वाद मान्य हैं, और स्थान-स्थान पर उन्होंने सब का आदर किया है। अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत-वाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद तथा शुद्धाद्वैतवाद—सभी वैदिक हैं। सभी वेद को प्रमाण मानते हैं। महात्माओं ने अनुग्रह करके भिन्न-भिन्न अधिकारियों के हित के लिये उन वादों का प्रचार किया है।

हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता । कहहिं सुनहिं बहु बिधि श्रुति सन्ता ।।

इससे यह प्रश्न उठाना अनुचित है कि कौन ठीक है और कौन नहीं। अधिकारी-भेद से सभी ठीक हैं। एक रोग की अनेक औषधियाँ हैं और सभी ठीक हैं, पर सफल वही होती है जो जिसके प्रकृति के अनुकूल पड़ती हो। तर्क-कर्कश महानुभाव सदा से झगड़ते आये हैं और झगड़ते रहेंगे। सच्चे साधक वाद-विवाद का मार्ग छोड़कर सीधे-सीधे साधन में लग जाते हैं।

साधन—साधन के विषय में गोस्वामीजी का निश्चित मत है। यथा—

"पाई न गति केहि पतितपावन । राम भजि सुनु सठ मना ।।"

शिवजी कहते हैं—

उमा कहौं मैं अनुभव अपना । सत हरि भजन जगत सब सपना ।।

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—

प्रनत कल्प तरु करुना पुंजा । उपजै प्रीति राम पद कंजा ।।

भुसुण्डिजी कहते हैं—

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी । कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी ।।
जोगी सूर सुतापस ज्ञानी । धर्म निरत पंडित विज्ञानी ।।
तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी । राम नमामि नमामि नमामी ।।

और पाँचवा कोई वक्ता मानस का है ही नहीं। अतः श्लोक के उत्तरार्द्ध में इसी बात पर बल देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—

यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहन्तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।।

जिसका चरण ही भवसागर पार जाना चाहनेवाले के लिये एक-मात्र नौका है उस अशेष कारण के परे रामनामवाले हरि की मैं बन्दना करता हूँ।

अतः श्री रामचरितमानस में मुझे तो कोई असामञ्जस्य दृष्टिगोचर नहीं होता। विचार करने पर हमारे छोटे भाई भी सम्भवतः कोई असामञ्जस्य न पावेंगे।

—————

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
...भवन, ...काशी

मानस की छटा

मानस सर—भगवान वाल्मीकि ने कहा है कि—

"कैलास पर्वते राम मनसा निर्मितम् परम् ।
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः ॥
तस्मात् सुश्राव सरसः साऽयोध्यामुपगूहते ।
सरः प्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता ॥

हे रामजी ! कैलास पर्वत में ब्रह्मदेव द्वारा मन से निर्मित एक बड़ा सरोवर है । हे नरशार्दूल ! इसलिये यह मानस सर कहलता है । इसी से सरयू नदी निकली हैं, जो अयोध्या में बहती हैं । ब्रह्मसर से निकली हैं, इसलिये सरयूजी पुण्य-नदी हैं ।"

जिस मानस सर को साक्षात् ब्रह्मदेव ने मन से निर्माण किया है, उसकी मनोहारिणी छटा देखकर यदि दर्शक सुधबुध खो बैठे, उसे संसार भूल जाय, और किसी भाँति उसे उस सरोवर को छोड़ने का जी न चाहे, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है । कैलास पर्वत की गोद में साठ-सत्तर मील तक फैली हुई यह जल की चादर देवताओं के मन को भी मोहित करती है । पूर्णिमा की रात्रि को जब कि चन्द्र-तारक से श्रृंगारित सम्पूर्ण गगनमण्डल उसमें प्रतिबिम्बित हो उठता है, तो ऐसी शोभा होती है कि मानों विधाता ने हरगौरीप्रीत्यर्थ अपने अलौकिक रचना-पाण्डित्य के परिचयार्थ दो रत्नजटित नीलमणि के विशाल पुटों में सुरक्षित कर के सुधा-सर्वस्व को ही यहाँ लाकर अर्पण कर दिया है ।

रामचरित मानस—कैलासनाथ देवाधिदेव महादेव भी इसकी शोभा से कुछ कम प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने भी मनद्वारा एक रामचरित सर का निर्माण किया, और उसका नाम भी मानस ही रक्खा। यथा—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमय शिवा सन भाखा॥
ताते रामचरित मानसवर। धरेउ नाम हिय हेरि हरखि हर॥

उस दिव्यातिदिव्य मानस को भुसुण्डिजी ने पाया और उसकी सहायता से अपना मानस तैयार किया। याज्ञवल्क्यजी ने पाया और अपना मानस तैयार किया। याज्ञवल्क्यजी की परम्परा से श्री गोस्वामीजी को उसकी प्राप्ति हुई और उन्होंने भी अपना मानस पृथक् तैयार किया। इसी मानस की छटा के विषय में कुछ कहना है। इसकी शोभा ने चित्त पर ऐसा अधिकार जमा लिया कि चुप रहना असम्भव हो उठा।

मानस की छटा—इस मानस की छटा कैलासस्थित उस भौतिक मानस से कितनी बढ़ी-चढ़ी है; इस बात को इतने से ही जाना जा सकता है कि यह मानस रामसीय-यश सलिल सुधा से भरा हुआ है। रामजी की अगुण अबाध महिमा ही इसकी गहराई है। उपमाएँ वीचि-विलास हैं। छन्द रङ्ग-बिरङ्गे कमल हैं, जिनके पराग अर्थ और मकरन्द भाव हैं। नवरस, जप-तप, योग, विराग जलचर हैं। भक्ति-निरूपण विधान लता-वितान हैं। फूल संयम-नियम हैं। फल ज्ञान है और हरिपदरति रस है इत्यादि। सहृदय पाठक समझ सकते हैं कि उस भौतिक मानस से इस वाङ्मय मानस में कितनी बड़ी विशेषता है।

तिसपर इस महाकवि ने अपने मानस के चारो ओर सम्वादरूपी चार घाट बाँधे हैं, जिनमें से शिवपार्वती सम्वाद मणिमय घाट है, याज्ञवल्क्य भरद्वाज सम्वाद माणिक्यमय घाट है, भुसुण्डि गरुड़ सम्वाद गजमुक्तामय है। यथा—

मनि मानिक मुक्ता छवि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तन पाई। लहै सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेइ सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजइ अनत अनत छबि लहहीं॥

अपनी कविता को गोस्वामी जी ने सीपी की मोती माना है। यथा—

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाती शारद कहहिं सुजाना॥
जो बरसै बरवारि विचारू। होइ कवित्त मुक्ता मणि चारू॥

जुगुति वेंधि पुनि पोइहहि, राम चरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग॥

ये ही घाट क्रम से ज्ञानघाट, कर्मघाट, उपासनाघाट तथा दीनघाट कहलाते हैं।

इसी मानस से सरयू काव्यरूपी पुण्यतोया नदी भी निकली, जो खुले मैदान बहती हुई सन्त समाजरूपी अयोध्या प्रान्त में पहुँचकर भक्तिरूपी भागीरथी से मिल गई। दक्खिन से सरकार का समर-यशरूपी शोंण आ मिला; त्रिविध ताप त्रासक तिरमुहानी बन गई, और राम-स्वरूप-रूपी सिन्धु में जा मिली।

पूर्णिमा की रात—श्री गोस्मामिजी के मानस की अपूर्व छटा का, अति संक्षिप्त रूप से, उन्हीं के शब्दों में यथासाध्य मैंने वर्णन किया; पर इसका आनन्द तो उन्हीं भाग्यवानों को मिलता है, जो मन की आँखों से इस दृश्य को देख सकते हैं। अब यह देखना है कि पूर्णमासी की रात में इसकी कैसी शोभा होती है। जिस भाँति गोस्वामीजी के मानस का जल, कमल, मकरन्द, पराग, जलचर मछली आदि दूसरे ही हैं उसी भाँति इसकी पूर्णमासी भी दूसरी है, चन्द्र भी दूसरा है तथा ग्रह-नक्षत्र-मण्डल भी दूसरा है। इस पूर्णिमा के शोभा-वर्णन की पर्याप्त सामग्री श्री गोस्वामीजी ने एक दोहे में रख दी है, जिसका विवरण व्याख्याता की बुद्धि तथा व्याख्यान शक्ति पर निर्भर है। मैंने भी इसके वर्णन के स्थान में उसी दोहे की यथाशक्ति व्याख्या कर देना ही यथेष्ट समझा।

राकारजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन सरिस, बसहु भगत उर ब्योम॥

अर्थ—आपकी भक्ति ही पूर्णिमा की रात और राम नाम ही चन्द्र है, दूसरे (गौण) नाम तारे हैं, ये भक्त के हृदयरूपी आकाश में बसें।

व्याख्या—रजनी–रात को रजनी कहते हैं, जिसमें सूर्य्य का दर्शन नहीं होता। यहाँ रात से अभिप्राय अविद्या निशा से है, जिसमें विज्ञानरूपी दिनकर का प्रकाश रहता ही नहीं, परन्तु सभी रातों में समान अन्धकार नहीं होता। विज्ञान का प्रकाश न रहने पर भी नामचन्द्र का प्रकाश न्यूनाधिकरूप से रहता है। अमावस्या की रात को चन्द्र का प्रकाश भी नहीं रहता। यही रात मायारूपी नारी है। यथा—"**नारि निविड़ रजनी अँधियारी।**" इसमें मोहतम की विशेषता रहती है। दिन का सामना करनेवाली तथा उससे भी सुन्दर तो पूर्णिमा की रात है। इसकी उपमा भक्ति से दी गई है।

चन्द्र की कला—राकारजनी–राका पूर्णिमा को कहते हैं। इसमें भगवान् निशानाथ सोलहो कलाओं से सम्पन्न रहते हैं। (१) अमृता, (२) मानदा, (३) तुष्टि, (४) पुष्टि, (५) प्रीति, (६) रति, (७) लज्जा, (८) श्री, (९) स्वधा, (१०) रात्रि, (११) ज्योत्स्ना, (१२) हंसवती, (१३) छाया, (१४) पूर्णा, (१५) वामा और (१६) अमा—ये ही सोलह कलाएँ हैं। कला, प्रकाश या किरण-भिन्न सामग्री नहीं हैं।

कला के बढ़ने के साथ-साथ चन्द्र की किरणों की अर्थात् प्रकाश की वृद्धि होती है, और जब चन्द्र सोलहो कलाओं से सम्पन्न हो जाते हैं और सम्पूर्ण किरणें काम करने लगती हैं, तब प्रकाश भी परा सीमा को पहुँच जाता है। यहाँ रामचरित्र ही राम-नामरूपी चन्द्र की किरणें हैं, इन्हीं की सोलह कलाएँ हैं। उन्हीं से युक्त होकर रामनाम पूर्ण चन्द्र होता है और मोहान्धकार का नाश करता है। कवि ने उन प्रत्येक कलाओं के पृथक् माहात्म्य कहे हैं। यथा–

१–निज संदेह मोह भ्रमहरनी। करउँ कथा भवसरिता तरनी॥
२–बुध विश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलिकलुष विभंजनि॥
३–रामकथा कलि पन्नग भरनी। पुनि विवेक पावक कह अरनी॥

४–रामकथा कलि कामद गाई। सुनत सजीवन मूरि सोहाई॥
५–सोइ वसुधातल सुधातरंगिनि। भवभंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि।
६–असुर सेन सम नरक निकंदनि।साधु बिबुध कुलहित गिरिनन्दनि
७–संत समाज पयोधि रमा सी।
८–विश्व भार भर अचल क्षमा सी॥
९–जमगन मुँह मसि जग यमुना सी।
१०–जीवन मुक्ति हेतु जिमि कासी॥
११–रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी।
१२–तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥
१३–शिवप्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
१४–सदगुन सुरगण अंब अदिति सी।
१५–रघुपति भगति प्रेम परमिति सी॥
१६–राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर विहारु॥

इनमें से प्रथम चार तो क्रम से दीनघाट, कर्मघाट, ज्ञानघाट और उपासना घाट की कथा के माहात्म्य रूप हैं और शेष बारह राम-कथा के बारह खण्डों के माहात्म्यरूप हैं। श्री गोस्वामीजी ने स्वयम् राम-कथा को बारह खण्डों में विभक्त किया है। यथा—

(१) राम भगत हित नर तनुधारी। सहि संकट किये साधु सुखारी।
(२) राम एक तापस-तिय तारी।
(३) रिषि हित राम सुकेत सुताकी। सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी।
(४) भंजेउ राम आप भव चापू।

(५) दंडक बन प्रभु कीन्ह सोहावन।
(६) निशिचर निकर दले रघुनन्दन।
(७) सबरी गीध सुसेवकन्हि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
(८) राम सुकंठ बिभीषण दोऊ। राखे शरण जान सब कोऊ॥
(९) राम भालु कपि कटक बटोरा। सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा॥
(१०) राम सकुल रण रावण मारा।
(११) सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
(१२) राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनिवर बानी॥

इन्हीं से संपन्न होकर रामनाम भक्ति-रूपी राका रजनी को प्रकाशित करता है। कहा भी है—

रामचरित राकेशकर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विशेप बड़ लाहु॥

रामभक्ति—भगति तव—अर्थात रामचन्द्र की भक्ति। अन्य देवों की भक्ति पूर्णमासी की रात्रि नहीं है, क्योंकि राम तो पूर्णब्रह्म हैं। यथा—

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

ये ही माया-पति हैं। देवता आदि सभी माया के वश में हैं। यथा—

देव दनुज नर नाग मनुज खग माया बिबस बिचारे।
इनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे॥

अतः देवताओं की भक्ति भी उँजेली रात है, उसमें भी उनकी महिमा के अनुसार थोड़ा-बहुत प्रकाश रहता है, पर पूर्णिमा की रात की बात ही दूसरी है।

फिर भी रात्रि रात्रि ही है। यथा—

माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारि वर्ग जानत सब कोऊ॥

भक्ति में सेव्य-सेवक भाववाले अहङ्कार का बनाये रखना अनिवार्य्य है। यथा—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

इसीलिये वेदान्ती लोग इसे 'संवादि भ्रम' कहते हैं। ऐसे भ्रम में यह विशेषता है कि यह फल-काल में प्रभा हो जाता है। जैसे मणि की प्रभा को मणि मानकर उस ओर दौड़नेवाले को मणि की प्राप्ति होती है; इसी भाँति भक्ति से भगवत्-प्राप्ति होती है। इसीलिये भक्ति को सब साधनों की फल-रूपा माना है। यथा—

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ज्ञान निपुणाई॥
नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संयम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई॥
जँह लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥

जिस भाँति पूर्णिमा की रात्रि में यथेष्ट प्रकाश भी रहता है और दिन की भाँति ताप नहीं होता, उसी भाँति भक्ति में बोध भी रहता है और तलवार की धार पर चलना भी नहीं पड़ता। इस भाँति भक्ति को पूर्णिमा की रात्रि मानने का यथेष्ट कारण है।

नामचन्द्र—"राम नाम सोइ सोम।" अर्थात राम नाम ही पूर्णचन्द्र है। आह्लादक गुणों से युक्त होने से ही निशानाथ का चन्द्र नाम है। राम नाम की जो व्युत्पत्तियां श्रुति द्वारा की गई हैं, वे सभी आह्लाद-मूलक हैं। अतः राम नाम को चन्द्र कहा। यथा—

(१) **'अखिलं रातीति रामः।'** सब दे देते हैं, इसलिये राम कहलाते हैं। यथा—**'सकुच विहाय माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही॥'**

(२) **'राजते यो महीस्थितः स रामः।'** पृथ्वी पर स्थित होकर शोभते हैं। यथा—**'तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन।'**

(३) **'राक्षसाः येन मरणं यान्तीति रामः।'** जिसके द्वारा राक्षस मारे जाते हैं। यथा—**'यद्यपि मनुज दनुज कुल घालक।'**

(४) 'यदृच्छाशब्दः गुणातिशयात् प्रसिद्धिं गतः।' गुणाधिक्य से प्रसिद्धि हुई। यथा—'राम कीन्ह चाहे सो होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥'

(५) 'रमयतीति रामः।' आनन्द देते हैं इसलिये राम कहलाते हैं। यथा—'सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी।'

(६) 'राक्षसान् मर्त्यरूपेण प्रभाहीनान् करोति यथा राहुः मनसिजम्।' राहु की भाँति राक्षसों को निस्तेज कर देते हैं। यथा—'चले जहाँ रावण शशि राहू।'

(७) 'राज्यार्हाणां महीभृतां चरित्रेण धर्ममार्गं रातीति रामः।' चरित्र द्वारा राजाओं को धर्म-मार्ग देते हैं। यथा—'भूप मौलि मणि मंडन धरनी।'

(८) 'ध्यानेन वैराग्यं रातीति रामः।' ध्यान द्वारा वैराग्य देते हैं। यथा—'सुमिरत रामहिं तजहि नर, तृण सम विषय विलास।'

(९) 'पूजनादैश्वर्य्य रातीति रामः।' पूजन से ऐश्वर्य्य देते हैं। यथा—

'जो संपति शिव रावणहिं, दीन्ह दिये दस माथ।
सो संपदा बिभीषनहिं, सकुच दीन्ह रघुनाथ॥'

(१०) 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः।' जिसमें योगी रमण करते हैं। यथा—'करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता सब त्यागी।' अथवा—'योगिन परम तत्त्वमय भासा। सान्त सुद्ध द्व परम प्रकासा।'

इसी में सर्वाधिक पाप-तम-नाशन का सामर्थ्य है। यथा—

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केशरी गगन बनचारी॥
बिथुरे नभ मुक्ता हल तारा। निसि सुंदरी केर श्रृंगारा॥
यद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका॥

राम सकल नामन ते अधिका। होहु नाथ अघ खगगन बधिका॥

जिस भाँति बिना पूर्णचन्द्र के पूर्णमासी नहीं, उसी भाँति बिना नाम के भक्ति नहीं। नाम ही नहीं, तो भक्ति किसकी ? भक्त के हृदयाकाश में राम-नामरूपी चन्द्र षोड़शकला चरित्र के साथ उदित होकर उसे प्रकाशमय बना देता है।

गौण नाम—अपर नाम उड़गन बिमल—भाव यह कि नामकरण के समय जो नाम रक्खा जाता है, वही नाम उस व्यक्ति का होता है—भैयाजी, बाबूजी, महाशयजी और महात्माजी आदि नाम गौण हैं। इसी भाँति सरकार के नाम-करण के समय गुरुजी ने 'राम' नाम रक्खा था। इसलिये प्रधान नाम तो राम ही है। शेष नाम सब गौण हैं; सरकार के गुण-सूचक हैं। उनकी भी महा महिमा है। उनकी उपमा तारों से दी गई है। मुकुन्द, कृपा-कन्द, गरीब-नेवाज आदि गौण नाम हैं।

२८ नक्षत्र—आकाश में तारों के गुच्छे भी अनेक हैं, जिनमें से अट्ठाईस 'नक्षत्र' नाम से प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार रामचरित्र में २८ गुण-ग्राम हैं जिन्हें 'स्तुति' कहते हैं। इनका माहात्म्य (अर्थात् फलस्तुति) गोस्वामीजीने एकत्र लिख दिया है। यथा—

(१) जगमंगल गुन ग्राम राम के।
(२) दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
(३) सद गुरु ज्ञान बिराग जोग के।
(४) बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
(५) जननि (६) जनक सियराम प्रेम के।
(७) बीज सकल व्रत धरम नेम के॥
(८) समन पाप संताप सोक के।
(९) प्रिय पालक परलोक लोक के॥

(१०) सचिव (११) सुभट भूपति बिचार के।
(१२) कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥
(१३) काम कोह कलिमल करिगन के।
केहरि शावक जन मन बन के ॥
(१४) अतिथि पूज्य प्रीतम पुरारि के।
(१५) कामद घन दारिद दवारि के ॥
(१६) मंत्र महा मणि विषय व्याल के।
(१७) मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
(१८) हरन मोह तम दिनकर कर से।
(१९) सेवक सालि पाल जलधर से ॥
(२०) अभिमत दानि देव तरवर से।
(२१) सेवत सुखद सुलभ हरिहर से ॥
(२२) सुकवि सरद नभ मन उडुगन से।
(२३) राम भगत जन जीवन धन से ॥
(२४) सकल सुकृत फल भूरि भोग से।
(२५) जगहित निरुपधि साधु लोग से ॥
(२६) सेवक मन मानस मराल से।
(२७) पावन गंग तरंग माल से ॥
(२८) कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाखण्ड।
दहन राम गुण ग्राम जिमि, इंधन अनल प्रचण्ड ॥

ये फल-स्तुतियाँ क्रम से (१) ब्रह्मदेव (२) कौशल्या (३) अहल्या (४) परशुराम (५) रानी सुनयना (६) जनक (७) भरद्वाज (८) वाल्मीकि (९) अत्रि

(१०) शरभङ्ग (११) सुतीक्ष्ण (१२) अगस्त्य (१३) जटायु (१४) हनूमान (१५) विभीषण (१६) देवता (१७) ब्रह्मदेव (१८) इन्द्र (१९) शङ्कर (२०) वेद (२१) शङ्कर (२२) पुरजन (२३) सनकादि (२४) नारद (२५, २६, २७) भुसुण्डि और (२८) श्री गोस्वामी जी की की हुई स्तुतियों की हैं।

दहराकाश—बसहु भगत उर व्योम—सभी के हृदय में आकाश होता है, जिसे दहराकाश कहते हैं। भगवती श्रुति कहती है और साधकों का अनुभव भी यही है कि, जैसा यह आकाश है, वैसा वह आकाश भी है। परन्तु रामनाम-रूपी चन्द्र का निवास तो भक्त के ही दहराकाश में होता है। जिस मानस का प्रकरण चल रहा है, वह भक्त के दहराकाश में ही विराजमान है।

रामचरितमानस का उत्कर्ष—उसमें जब राम-नाम-रूपी पूर्णचन्द्र अपनी षोड़श कलाओं और नक्षत्र-मण्डलों के साथ प्रतिबिम्बित होते हैं, तब वह मानस अपने चारों मणि-मण्डित घाटों के साथ जगमगा उठता है। इस दृश्य के हृदय में लाने से इस बात का कुछ आभास मिल जाता है कि भौतिक मानस से इस मानस की छटा कितनी बढ़ी हुई है।

अध्यात्म दिन—यह तो हुई रात की छटा की बात, पर दिन को भी तो किसी प्रकार से उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि दिन में नक्षत्रमण्डल का दर्शन नहीं होता, स्वयम् चन्द्र भी फीके पड़ जाते हैं। पर, क्या इसका कारण भगवान भास्कर का अपार तेज नहीं है? उनके तेज के द्वारा तो उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों का दर्शन होना चाहिए, जो चाँदनी रात में दिखाई नहीं पड़ते थे। क्या उनके बिना देखे छटा के वर्णन की पूर्ति हो सकती है? क्या भगवान मरीचि-माली की तेजोमयी मूर्ति उस जलराशि में प्रतिफलित होकर चन्द्र और नक्षत्रमण्डल के घाटा को पूरा न कर सकेगी?

नामसूर्य्य—इन प्रश्नों के नकारात्मक उत्तर देने का कोई कारण तो नहीं मालूम होता। फिर भी, यह मालूम होना चाहिये कि विज्ञानरूपी दिन का सूर्य्य कौन है? कहना न पड़ेगा कि वह सूर्य्य भी रामनाम ही है। श्री रामनाम का ऐसा माहात्म्य है कि जगत के कल्याण के लिए वह कभी चन्द्र हो जाता है और कभी सूर्य्य हो जाता है। यथा—'**जग हित हेतु विमल विधु पूषन**'।

आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक चरित—वही राम-नाम जब रामचरित के आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ का प्रकाश करता है तब चन्द्र हो जाता है, और जब आध्यात्मिक अर्थ का प्रकाश करता है तब सूर्य्य हो जाता है। श्री रामचरित के तीनों अर्थ हैं, पर तीनों साथ नहीं चलते। आधिदैविक और आधिभौतिक का तो साथ रहता है, पर आध्यात्मिक का साथ उनसे नहीं हो सकता; क्योंकि आध्यात्मिक चरित सूक्ष्मतर है, और वह ब्रह्माण्ड में नहीं हो कर पिण्ड में होता है। यथा—

बपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका दुर्ग रचित मन दनुजमय रूपधारी।
विविध कोसौघ अतिरुचिर मंदिरनिकर सत्वगुन प्रमुख त्रैकटक धारी॥
कुनप अभिमान सागर भयंकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपारं।
नक्र रागादि संकुल मनोरथ सकल संग संकल्प बीची विकारं॥
मोह दसमौलि तद्भ्रात अहंकार पाकारिजित काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट क्रोध पापिष्ट विबुधान्तकारी॥
द्वेष दुर्मुख दंभ खर अकंपन कपट दर्प मनुजाद मद सूलपानी।
अमित बल परमदुर्जय निसाचर निकर सहित षड़वर्ग गोजातुधानी॥
जीव भवदंघ्रिसेवक बिभीषण बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।
नियम यम सकल सुर लोक लोकेस लंकेसबस नाथ अत्यंत भीता॥
ज्ञान अवधेस गृह गेहनी भक्ति सुभ तत्र अवतार भू भार हर्त्ता।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितुवाक्य कृत गमन किय गहन वैदेहि भर्त्ता॥
कैवल्य साधन अखिल भालुमर्कट विकट ज्ञान सुग्रीव कृत जलधि सेतू।
प्रबल वैराग्य दारुन प्रभंजन तनय विषय वन भवनमिव धूम केतू॥
दुष्ट दनुजेस निर्बंस कृत दासहित विस्व दुखहरन बोधैक रासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमलवासी॥

आधिभौतिक तथा आधिदैविक चरित तो कल्प में एक बार ब्रह्माण्ड में होता है। आधिभौतिक चरित सरकार की मानुषी लीला है, जिसे देखकर बड़े-बड़े के हृदय में मोह हो जाता है। यथा—

एक राम अवधेस कुमारा। तिनकर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावण मारा॥

इस चरित्र के आधिदैविक रूप को अमलात्मक मुनीन्द्र लोग ही देख सकते हैं। यथा—

श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस शीश अहीश महिधर लखन सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तन चले दलन खल निशिचर अनी॥
राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अलख अपार, नेति नेति नित निगम कह॥

सूर्य की बारह कलाएँ—मानना पड़ेगा कि सूर्य्य के प्रकाश में मानस की छटा ही दूसरी है। सूर्य की बारह कलाएँ हैं। यथा—(१) तपनी (२) तापिनी (३) सन्धिनी (४) बोधिनी (५) कालिन्दी (६) शोषिणी (७) वरेणी (८) आकर्षिणी (९) वैष्णवो (१०) विष्णुविद्या (११) जोत्स्ना और (१२) हिरण्या। इसी भाँति नाम-सूर्य की भी बारह कलाएँ हैं, जिनके माहात्म्य दूसरे हैं। यथा—

(१) नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहि मुदमंगल बासा॥
(२) नाम कोटि खल कुमति सुधारी।
(३) सहित दोष दुख दास दुरासा।
दलइ नाम जिमि भव निसि नासा॥

(४) भव भय भंजन नाम प्रतापू ।
(५) जन मन अमित नाम किय पावन ।
(६) नाम सकल कलि कलुष निकंदन ।
(७) नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ।
(८) नाम अनेक गरीबनेवाजे । लोक वेद वर बिरद बिराजे ॥
(९) नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं । करहु विचार सुजन मन माँही ॥
(१०) सेवक सुमिरत नाम सप्रीती । विनुश्रमप्रबल मोह दल जीती ॥
(११) फिरत सनेह मगन सुख अपने ।
(१२) नाम प्रसाद सोच नहिं सपने ।

अध्यात्म सूर्य्य के प्रकाश में सब दृश्य ही बदल जाता है ।

अध्यात्म रामायण—इसमें शरीर ही ब्रह्माण्ड है । अर्थात् मूलाधार चक्र भूलोक है । स्वाधिष्ठान भुवर्लोक है । मणिपूर स्वर्लोक है । अनाहत महर्लोक है। विशुद्ध जनःलोक है । आज्ञाचक्र तपःलोक है और सहस्रार सत्यलोक है । मेरु-दण्ड सुमेरु पर्वत है । हड्डियाँ कुल पर्वत हैं । पिङ्गला नाड़ी गङ्गा है । इड़ा यमुना है । सुषुम्ना सरस्वती हैं । अन्य नाड़ियाँ भी पुण्य-नदियाँ हैं । सप्त धातु सातो द्वीप हैं । वाष्प, स्वेद आदि समुद्र हैं । मूलाधार में कालाग्नि है। हड्डियों में वड़वाग्नि है । सुषुम्ना में विद्युताग्नि है । नाभि-मण्डल में पार्थिव अग्नि है । सूर्य्याग्नि हृदय में है । चन्द्रमण्डल कपाल में है । इन्द्रियाँ नक्षत्र हैं । प्राण, प्रवह, संवह आदि वायु हैं । प्रवृत्ति लङ्का है । वह देहाभिमान-रूपी समुद्र से घिरी हुई है । मोह रावण है । अहङ्कार कुम्भकर्ण है । काम इन्द्रजीत है । लोभ अतिकाय है । मत्सर महोदर है । क्रोध देवान्तक है । द्वेष दुर्मुख है । दम्भ खर है । अकम्पन कपट है, इत्यादि । इसी भाँति निवृत्ति अयोध्या है । भक्ति कौशल्या है । विज्ञान दशरथ हैं । कैवल्य-साधन वानरीसेना है । ज्ञान सुग्रीव है । वैराग्य हनूमान है । विराट् लक्ष्मण हैं । हिरण्यगर्भ शत्रुघ्न हैं । ईश्वर भरत हैं । तुरीय

ब्रह्म राम हैं। आह्लादिनी शक्ति सीता हैं। नामोपासक के भीतर राम-रावण सङ्ग्राम चला करता है। कभी रावण की ज़य होती है, कभी राम की जय होती है।

श्रीराम रावण समर चरित अनेक कल्प जे गावहीं।
शत शेष सारद निगम कवि तेउ तदपि पार न पावहीं॥

इस भाँति यह घट (अध्यात्म) रामायण नित्य है। इसका दर्शन तो दिन (ज्ञान) में ही होता है।

संक्षेप में रात और दिन में मानस की छटा का थोड़ा सा आभास पाठकों को दिखला दिया गया। मानस की रात की छटा दूसरी है। दिन की छटा बिलकुल दूसरी है। किसी को कम नहीं कह सकते। अन्त में यही कहना होगा कि जिसे जो अच्छी लगे उसके लिये वही शोभा बढ़कर है। दोनों शोभाएँ बेजोड़ हैं। दोनों में दर्शक का परम कल्याण होता है। परन्तु मानस का सच्चा यात्री वही है जिसने रात की शोभा देखी हो और दिन की भी शोभा देखी हो।

इन छटाओं पर जो महात्मा मुग्ध हो जाते हैं वे मानस को छोड़कर कहीं जाते ही नहीं। यथा—

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिनके राम चरण भल भाऊ॥

सियावर रामचन्द्र की जय।

धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो॥
प्राणियों में सद्भावना हो। विश्व का कल्याण हो॥
हरहर महादेव!

४

मानस की तिथि-तालिका

भूमिका—श्रीमद्रामचरित मानस के प्रेमियों के मन में घटनाओं के समय जानने की आकांक्षा स्वाभाविकी है। उसका निर्धारण यदि मानस से ही हो सके तो सर्वोत्तम, नहीं तो अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों से तथा ऐतिह्य प्रमाणों से, जो मानस के अनुकूल पड़ते हों, सहायता लेना उचित है।

श्रीरामचरित मानस की तीन घटनाओं का समय तो लोकप्रसिद्ध है- (१) चैत्रशुक्ला नवमी को रामजन्म (२) अगहन सुदि पञ्चमी को ब्याह और (३) आश्विन सुदि दशमी को विजयोत्सव। श्री गोस्वामीजी ने तिथि का उल्लेख तो केवल राम-जन्महो में किया है, पर स्थान-स्थान पर ऐसे सङ्केत हैं, जिनके अनुसार अनुसन्धान करने से प्रायेण सभी घटनाओं का समय-निर्धारण किया जा सकता है। यथा—

बालकाण्ड—

प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सियमुख सरिस देखि सुख पावा॥

इस अर्धाली से इतना पता तो चल ही जाता है कि उस दिन शरत् पूर्णिमा या चतुर्दशी थी। दूसरे दिन धनुष-यज्ञ का वर्णन है, जिसके लिये प्रतिपद् अनुकूल तिथि नहीं है। अतः कहना होगा कि फुलवारी के दिन चतुर्दशी थी, और धनुष-यज्ञ के दिन शरत्पूर्णिमा थी। इसी से यह भी अनुमित होता है कि विश्वामित्रजी का यज्ञ आश्विन के नवरात्र में हुआ, और सम्भवतः वह चण्डी-याग था।

इतना पता लग जाने पर अयोध्या से दोनों भाइयों के प्रस्थान से लेकर विवाह तक की सब घटनाओं की तिथियाँ निकाल ली जा सकती हैं। बारात के

टिकने तथा वधु-प्रवेश का समय ऐतिह्य प्रमाणों से निश्चित किया जा सकता है। विवाह के बाद बारह वर्ष अयोध्या में निवास लोक-प्रसिद्ध है, और **'आये ब्याहि राम घर जब ते। बसे अनंद अवध सब तब ते ॥'** से लेकर **'जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये ॥'** तक बारह पंक्तियाँ लिखकर गोस्वामीजी भी इसी बात का सङ्केत करते हैं।

अयोध्याकाण्ड—

झलका झलकत पायन कैसे। पंकज कोष ओसकन जैसे ॥

इस अर्धाली से अयोध्याकाण्ड की सब घटनाओं की तिथियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। शृङ्गवेरपुर से भरतजी रामजी को मनाने नंगे पाँव चले तो पहिले ही दिन पावों में छाले पड़ आये। इससे स्पष्ट है कि महीना ज्येष्ठ का था। रामजी के वनवास के बाद, चक्रवर्तीजी के देहावसान पर, कैकयदेश दूत भेजने, भरतजी के आने, और्ध्वदैहिक क्रिया आदि करने तथा भरतजी के अभिषेक के लिये सभा करने में निश्चय ही एक महीने से अधिक समय लगा होगा। अतः राम-वन-वास का चैत्र में होना सिद्ध है। **'एक समय सब सहित समाजा। राज सभा रघुराज बिराजा ॥'** कहने से यह अन्दाज लगता है कि यह दरबार रामजी की २७ सत्ताइसवीं वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में रामनवमी को हुआ। दूसरे दिन रामजी वन गये। अतः वन-वास के लिये दशमी को प्रस्थान किया। जिस दिन अभिषेक होनेवाला था, उसी दिन वन गये।

इस अनुमान की पुष्टि वाल्मीकीय से होती है। वहाँ कहा गया है कि चैत्र के पुष्य नक्षत्र में जब कि उनका अभिषेक होने वाला था, रामजी वन गये। रामनवमी को प्रायेण पुनर्वसु नक्षत्र रहता है, अतः पुष्य का दशमी में पड़ना सर्वथा प्राप्त है। वन-वास की तिथि का निश्चय हो जाने से सम्पूर्ण अयोध्या-काण्ड की घटनाओं की तिथियाँ निकाल लेनी कठिन नहीं हैं। अब यह निश्चित-रूपेण कहा जा सकता है कि वन-वास चैत्र सुदि दशमी को हुआ; क्योंकि चैत्रमें पुष्य नवमी दशमी या एकादशी को ही पड़ता है। नवमी एकादशी अभिषेक योग्य तिथियाँ नहीं हैं, अतः दशमी को ही अभिषेक होनेवाला था।

आरण्यकाण्ड—

एक बार चुनि कुसुम सोहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहिं पहिराएउ प्रभु सादर।

इससे पता चलता है कि उस दिन वसन्तोत्सव था। उसी दिन जयन्त-नेत्रभङ्ग भी हुआ। **'बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहि मोहिं जाना॥ सकल मुनिन्हसन बिदा कराई। सीता सहित चले दोउ भाई॥'** इस चौपाई से पता चलता है कि सरकार का चित्रकूट-निवास लगभग एक साल तक रहा। इसके बाद अत्रिजी के यहाँ जाकर विदा हुए। दण्डक-वन में प्रवेश करते ही विराध-वध हुआ। शरभङ्गजी के आश्रम में गये। तत्पश्चात् अस्थि-समूह देखकर पृथ्वी को 'निशिचरहीन' करने की प्रतिज्ञा की। **'सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥'** इस पद से पता चलता है कि वनवास का अधिक काल आश्रम-मण्डलों में निवास करते बीता। वाल्मीकिजी कहते हैं कि **'तत्र संवसतस्तस्य मुनिनामाश्रमेषु वै। रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश॥'** अर्थात् मुनिमण्डल में रहते दश वर्ष बीत गये।

इसके बाद सुतीक्ष्णजी तथा अगस्त्यजी से मिलते हुए, पञ्चवटी में निवास किया। वहीं सीता-हरण हुआ। सीताजी को खोजते हुए दोनों भाई चले। रास्ते में वसन्त का वर्णन है। इससे पता चलता है कि सूर्पणखा विरूप-करण, खरदूषण वध तथा सीताहरण शिशिर में हुआ। श्रीरामचन्द्र के सूर्पणखा के साथ परिहास करने से यह कहा जा सकता है कि वे सब घटनाएँ बसन्त पञ्चमी के बाद हुईं। सीताहरण होते ही सरकार खोजने चल पड़े। अतः कहा जा सकता है कि सीताहरण फाल्गुन में हुआ।

किष्किन्धाकाण्ड—

गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल पर छाई॥

इस अर्धाली से यह पता चलता है कि हनुमत-मिलन, सुग्रीव-मिताई, वालि-वध, सुग्रीव की राजगद्दी ज्येष्ठ के अन्त में हुई। इससे यह भी सिद्ध होता है

कि नासिक से ऋष्यमूक आने में रामजी को तीन महीने लगे। प्रवर्षण गिरिपर निवास करते हुए, शरत्-वर्णन में रामजी कहते हैं कि **'चले हरखि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि। जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥'** इससे पता चलता है कि उस दिन सर्वदिग् यात्रा योग्य तिथि विजयादशमी थी। फिर भी सुग्रीव नहीं आये। एकादशी को रामजी निश्चय करते हैं कि **'सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी।'** हनुमान् जी भी इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि **'राम काज सुग्रीव बिसारा।'** अतः जाकर सुग्रीव को समझाया। इस तिथि के निश्चय हो जाने पर लङ्काकाण्ड में सरकार के सुवेल-निवास तक की सब तिथियों का पता चल जाता है।

लङ्काकाण्ड—

रहे दसो दिसि सावक छाई। मानहु मघा मेघ झरि लाई॥

इस अर्धाली से यह पता चलता है कि मेघनाद-वध भाद्रपद में हुआ। विजयोत्सव के लिये विजयादशमी प्रख्यात है, और ठीक है; पर रावण-वध नवमी को ही हो गया, दशमी को श्रीरामजी ने चण्डिका के शान्त्यर्थ बलि नीरांजन किया। यथा, कालिकापुराणे—**"व्यतीते सप्तमे रात्रे नवम्यां रावणं ततः। रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी। ततस्तु श्रवणे नाथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम्। विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलि नीराजनं हरिः॥"**

उपर्युक्त सभी बातें वाल्मीक रामायण के रामाभिरामी टीका से मेल खाती हैं। अतः उसी के तिथि-निर्णय को प्रमाण माना।

उत्तरकाण्ड—

रावणवध के बाद रामजी को अयोध्या पहुँचने की जल्दी पड़ी, क्योंकि चौदह वर्ष पूरा हुआ चाहता था, और भरतजी की प्रतिज्ञा थी कि **'तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जौ रघुवीर न अइहौ। तौ प्रभुचरन सरोज सपथ जीवत परिजन हि न पाइहौ॥'** अतः पुष्पक विमान द्वारा सरकार भरद्वाज के आश्रम पर पहुँच गये। वाल्मीकिजी कहते हैं कि उस दिन पञ्चमी

थी और उसी दिन चौदह वर्ष की अवधि पूरी हो गई। आश्विन सुदि दशमी से कार्त्तिक वदि पञ्चमी तक चौदह वर्ष पूरे होने में बारह तिथिवद्ध मासों का वर्ष मानना पड़ेगा, और अधिक मासों की भी गणना करनी पड़ेगी, जैसा कि आज तक व्यवहार में किया जाता है। लेन-देन में तिथिवद्ध मास माना जाता है, और अधिमास का भी सूद किराया आदि लिया जाता है। यही मत रामाभिरामी टीका का है। दूसरे किसी तरह से हिसाब नहीं बैठता। महाराज युधिष्ठिर के वनवास में भी बारह तिथिवद्ध मासों का वर्ष माना गया और अधिक मासों की भी गणना मानी गई। अतः यही ठीक है।*
षष्ठी को सरकार के आगमन का समाचार भरतजी को मिला, सप्तमी को भरत-मिलाप और अष्टमी को पुष्य नक्षत्र में रामराज्य हुआ।

तिथि-तालिका

बालकाण्ड—

१ मानस की रचना (शिवजी द्वारा)	—	इस कल्प से २७ कल्प पहिले।
२ रावणजन्म	—	वैवस्वत मन्वन्तर की उन्नीसवीं चतुर्युगी में।
३ रामजन्म	—	चौवीसवीं चतुर्युगी के त्रेता में, चैत्र सुदि नवमी को।
४ विश्वामित्रजी का अयोध्या आगमन	—	रामजन्म के चौदह वर्ष बाद
५ यज्ञ-रक्षा के लिए रामजी का प्रस्थान	—	आश्विन कृष्ण द्वादशी को
६ गङ्गा-संगम-निवास	—	,, ,, त्रयोदशी को
७ ताड़का वध	—	,, ,, चतुर्दशी को
८ सिद्धाश्रम पधारे	—	,, ,, अमावस्या को
९ यागारम्भ	—	,, शुक्ल प्रतिपद को

* सौर वर्ष तिथिबद्ध मास के वर्ष से १२ दिन बड़ा होता है। अतः चौदह वर्षों में १४ × १२ = १६८ दिनों का अन्तर पड़ता है। अतः कार्त्तिक कृष्ण पञ्चमी को ही अवधि पूरी हो गई।

१० सुवाहु मारीच पराभव — आश्विन शुक्ल षष्ठी को
११ जनकपुर के लिये प्रस्थान — ,, ,, दशमी को
१२ जनकपुर पधारे — ,, ,, त्रयोदशी को
१३ फुलवारी में सीताजी का दर्शन — ,, ,, चतुर्दशी को
१४ धनुष भङ्ग — ,, ,, पूर्णिमा को
१५ जनक-दूत अयोध्या पहुँचे — कार्तिक कृष्ण पञ्चमी को
१६ जनकपुर वारात पहुँची — ,, ,, धनतेरस को
१७ श्रीराम-जानकी विवाह — अगहन सुदि पञ्चमी को
१८ वारात की विदाई — पूस सुदि सप्तमी को

अयोध्याकाण्ड—

१ श्रीराम-सीता का अवध-निवास — वारह वर्ष
२ रामजीके सत्ताइसवें जन्मोत्सवका दरवार— चैत्र शुक्ल नवमी को
३ वनवास — ,, ,, दशमी को
४ शृङ्गवेरपुर निवास — ,, ,, एकादशी को
५ गङ्गा पार करके मार्ग में पेड़ तले निवास— ,, ,, द्वादशी को
६ भरद्वाज के आश्रम में निवास — ,, ,, त्रयोदशी को
७ यमुना पार करके मार्ग में निवास — ,, ,, चतुर्दशी को
८ वाल्मीक मिलन, चित्रकूट निवास — ,, ,, पूर्णिमा को
९ चक्रवर्त्तीजी का देहावसान — ,, ,, ,,
१० चक्रवर्त्तीजी के शवको तेल-नाव में रखना— वैशाख कृष्ण प्रतिपद को
११ कैकय देश दूत भेजे गये — ,, ,, द्वितीया को
१२ भरतजी अयोध्या पहुँचे — शुक्ल प्रतिपद को
१३ चक्रवर्त्तीजी की और्ध्वदैहिक क्रिया — ,, ,, द्वितीया को
१४ भरतजी के अभिषेकार्थ सभा — ,, ,, पूर्णिमा को
१५ भरतजी का चित्रकूट के लिये प्रस्थान — ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपद को
१६ गोमती तीर-निवास — ,, ,, द्वितीया को

१७ स्यन्दिका तीर-निवास	—	ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया को
१८ शृङ्गवेरपुर पहुँचे	—	,, ,, चतुर्थी को
१९ भरद्वाजाश्रम निवास	—	,, ,, षष्ठी को
२० मार्ग में निवास	—	,, ,, सप्तमी को
२१ यमुना-तीर निवास	—	,, ,, अष्टमी को
२२ मार्ग में निवास	—	,, ,, नवमी को
२३ चित्रकूट दर्शन	—	,, ,, दशमी को
२४ रामजी से भेंट	—	,, ,, एकादशी को
२५ श्रीरामजी का शुद्ध होना	—	,, ,, चतुर्दशी को
२६ भरत सभा (पहिली)	—	,, शुक्ल द्वितीया को
२७ जनकजी चित्रकूट आये	—	,, ,, तृतीया को
२८ भरत सभा (दूसरी)	—	,, ,, सप्तमी को
२९ भरतजी की विदाई	—	,, ,, त्रयोदशी को
३० भरतजी अवध पहुँचे	—	आषाढ़ कृष्ण प्रतिपद को
३१ जनकजी का तिरहुत प्रस्थान	—	,, ,, पञ्चमी को
३२ रामजी का चित्रकूट-निवास	—	एक साल

आरण्यकाण्ड—

१ जयन्त नेत्र-भङ्ग	—	चैत्र कृष्ण प्रतिपद् को
२ अत्रि मुनि से विदाई तथा विराध-वध	—	चैत्र शुक्ल एकादशी को
३ शरभङ्ग मुनि से भेट	—	,, द्वादशी को
४ आश्रम-मण्डली में निवास	—	दश वर्ष तक
५ सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य मुनि से मिलते हुए पञ्चवटी निवास	—	हेमन्त ऋतु तक
६ सूर्पणखा विरूपकरण	—	माघ शुक्ल त्रयोदशी को
७ खरदूषण वध (तीन दिन युद्धके बाद)	—	फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को
८ सीताहरण (वनवास के तेरहवें वर्ष में)	—	,, ,, अष्टमी को

किष्किन्धाकाण्ड—

१ वालि-वध, सुग्रीव को तिलक	— ज्येष्ठ के अन्त में
२ प्रवर्षण गिरि निवास	— पूरा चातुर्मास
३ हनुमानजी द्वारा सुग्रीव प्रबोध	— आश्विन शुक्ल एकादशी को
४ सुग्रीव का रामजी के पास जाना तथा सीतान्वेषण के लिये दूत भेजना	— कार्तिक कृष्ण एकादशी को

सुन्दरकाण्ड—

१ हनुमानजी द्वारा समुद्रोल्लंघन	— अगहन वदी एकादशी को
२ सीतादर्शन	— ,, ,, द्वादशी को
३ लङ्कादाह	— ,, ,, त्रयोदशी को
४ रामजी को समाचार देना	— अगहन सुदि सप्तमी को
५ विजय-यात्रा	— ,, ,, अष्टमी को
६ समुद्रतट सेना-निवास	— ,, पूर्णिमा को
७ विभीषण शरणागति	— पौष कृष्ण चतुर्थी को
८ रामजी द्वारा समुद्र से विनय	— ,, ,, षष्ठी को
९ समुद्र का शरण में आना	— ,, ,, नवमी को

लङ्काकाण्ड—

१ सेतु वन्ध (चार दिनों तक होता रहा)	— पौष कृष्ण त्रयोदशी तक
२ रामजी का लङ्का-प्रयाण	— ,, शुक्ल द्वादशी को
३ सुवेल पर्वत पर उतरना	— ,, ,, पूर्णिमा को
४ अङ्गद दूत वनाकर लङ्का भेजे गये	— माघ कृष्ण प्रतिपद् को
५ युद्धारम्भ	— ,, ,, द्वितीया को
६ चारो फाटक की लड़ाई	— श्रावण कृष्ण अमावास्या तक
७ लक्ष्मणजी को शक्ति लगी	— ,, शुक्ल प्रतिपद् को
८ कुम्भकर्ण वध (सात दिन युद्ध के वाद)	— ,, ,, पूर्णिमा को
९ मेघनाद वध	— भाद्रपद कृष्ण द्वादशी को

१०	रावण युद्ध के लिये निकले	— भाद्रपद कृष्ण अमावास्या को
११	दूसरी बार युद्ध के लिये निकले	— आश्विन शुक्ल प्रतिपद् को
१२	रावण-वध	— „ „ नवमी को
१३	विजयोत्सव	— „ „ दशमी को
१४	विभीषण राज्याभिषेक	— „ „ त्रयोदशी को
१५	सीता-मिलन	— „ „ चतुर्दशी को
१६	अयोध्या को प्रस्थान	— कार्तिक कृष्ण द्वितीया को

उत्तरकाण्ड—

१	भरद्वाज के आश्रम में पहुँचना	— कार्तिक कृष्ण पञ्चमी को
२	हनुमानजी द्वारा भरतजी को समाचार मिलना	— „ „ षष्ठी को
३	भरतमिलाप	— „ „ सप्तमी को
४	रामराज्याभिषेक	— „ „ अष्टमी को

हरि ॐ तत्सत्

५

मानस की भाषा

भूमिका—श्री गोस्वामीजी ने संस्कृत में रचना न करके प्राकृत में की। भाषा शब्द से वे प्राकृत का ही ग्रहण करते हैं। यथा—**'जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥'** सम्पूर्ण रामचरित-मानस पर प्राकृत व्याकरण की छाप है, जिसे प्राकृत से अपरिचित लोग अशुद्ध ठहराते हैं। अतः मानस के प्रेमियों को प्राकृत व्याकरण से अपरिचित न रहना चाहिए।

प्राकृत भाषा के तीन अंश हैं:—(१) तत्सम (२) तद्भव और (३) देशोद्भव। सुप् तिङ् के सहित जो संस्कृत के शुद्ध प्रयोग आते हैं, वे तत्सम कहलाते हैं; जो विकृत रूप में आते हैं वे तद्भव कहलाते हैं। अनेक देशों की भाषाएँ देशोद्भव के अन्तर्गत हैं। इस भाँति प्राकृत का विस्तार बड़ा भारी है। ग्रन्थकारने उपर्युक्त तीनों अंशों से काम लिया है। श्लोक-संज्ञक सभी पद्य तत्सम-प्रधान हैं। दोहा सोरठा आदि देशोद्भव अवधी भाषा में लिखे गये हैं; और तद्भव तथा तत्सम के प्रयोगों से सम्पूर्ण ग्रन्थ भरा पड़ा है। अतः कतिपय पंक्तियों में प्राकृत व्याकरण का आभास-मात्र दिखलाया जाता है। प्रक्रिया के प्रेमियों के लिये टिप्पणी में प्राकृत-प्रकाशादि के सूत्र उद्धृत कर दिये गये हैं।

व्याकरण—यहाँ जितने नियम हैं, उनमें सार्वभौम कोई नहीं, सभी प्रायेण काम में आते हैं।

✻ **स्वरविधि**—प्राकृत व्याकरण में **स्वरविधि** के अनुसार (क) अधीन का आधीन, कहहिं का कहाहिं, अहहिं का आहहिं, तनया का तनय, आशङ्का

✻ **स्वरविधि**—(क) दीर्घ ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ, (ख) एशय्यादिषु, (ग) ओवदरेदेन, (घ) अत्पथि हरिद्रा पृथिवीषु, (ङ) इत् एत्, (च) उदिक्षु वृश्चिकयोः, (छ) अन्मुकुटादिषु, (ज) उत् ओत् तुण्डरूपेषु, (झ) उदव्यादिषु, (ञ) एत इद

का असंका, जिह्वा का जीहा, ईर्ष्या का इरखा, नीति का निति (ख) शय्या का सेज (ग) मयूर का मोर, चञ्चु का चोंच, लवण का लोन (घ) हरिद्रा का हरद (ङ) हित का हेत (च) जीर्ण का जून, द्वि का दु (छ) गुरु का गुर, केतु का केत (ज) कुक्षि का कोंछ, धुरि का धोरी, सूचनि का सोचनि (झ पितृ का पितु, मातृ का मातु ञ) एषणा का ईषण (ट) धैर्य्य का धीर (ठ) मैत्री का मयत्री, वैदेही का वयदेही, वैश्य का वयसु (ड प्रणवौं का प्रणवउँ (ढ) रोष का रिस, आयु का आइ, विरुद का बिरिद हो जाता है। (ण) इ, या उ की सन्धि भिन्न वर्ण से नहीं होती। यथा—'**कुंद इंदु दर गौर सुंदरं**' त) ऋषि का रिस होता है।

❀ अयुक्त विधि २—अयुक्त विधि के अनुसार (क) मृगाङ्क का मयंक, लोग का लोअ, लोचन का लोयन, गज का गय, भुजंग का भुअंग, समाजू का समाऊ, सीता का सीआ, सीतल का सिअर, प्रसाद का पसाउ, हृद का हिअ, आदेश का आयस, गोयी का गोई, भेद का भेउ, सरयू का सरऊ, भुवन का भुअन, सुवासिनी का सुआसिनि ख) सकल का सिगर, काक का काग, मनाक् का मनाग (ग) अलीक का अलीह, आखेट का अहेर, खेल का हेल, कामदुधा का कामदुहा, घातीं का हाती, थी का ही, नाथ का नाह, वेध का वेह, अवगाध का अवगाह, तीरभुक्ति का तेरहुति, मुक्ता फल का मुक्ता हल, घ) गुण का गुन, क्षीण का खीन (ङ) ढँगरच का धँधरच, बलिबन्ध्र का वरिवंड (च) अपमान का अवमान, वेलपाती का वेलवाती (छ) परिमाण का परवान, प्रमाण का प्रवान, दामन का दावन, ज) योग का जोग (झ) बल का बर, चपल का चपर, ओले का ओरे (ञ) शिव का सिव, विष्णु का विस्नु (ट) दश का दह हो जाता है।

वेदनादेवरयोः, (ट) ईत् धैर्य्ये, (ठ) दैत्यादिषु अइत्, (ड) पौरादिषु अउत्, (ढ) स्वराणां स्वरा प्रायोपभ्रंशे, (ण) नयुवर्णस्यास्वे, (त) अयुक्तस्यरिः।

❀ अयुक्त विधि—(क) क ग च ज त द य वां प्रायेण लोपः, (ख) क ख त थ प फां ग घ द ध ब भाः, (ग) कोहः। ख ग थ ध भां हः। फो भहौ, (घ) णस्यनो भवेत्, (ङ) दोल दण्ड दशने षुडः, (च) पोवः, (छं) मोनुनासिको वो वा, (ज) आदेर्योजः, (झ) रलयोर्विपर्ययः (ञ) शषोः सः, (ट) दशादिषु हः।

युक्तविधि*—३–युक्तविधि के अनुसार (क) राजाज्ञा का रजाय, उद्धरी का उधरी, ऋद्धि का रिधि, सिद्धि का सिधि, कोष्ठ का कोठ, गोष्ठ का गोठ, स्थापना का थापना, (ख) खड्ग का खग्ग, चीत्कार का चिकार, खर्पर का खप्पर (ग) लोचन का लोयन। राज का राय, अजान का अयान, शत का सय, मदन का मयन। (घ) लक्ष्मी का लच्छी, विस्मर का बिसर, सपत्नी का सवति, नित्य का नित, यद्यपि का जदपि (ङ) द्रोह का दोह, अन्यत्र का अनत, क्रूर का कूर, धूर्त का धूत, कर्मनासा का कविनासा, कीर्ति का कीति, अहर्निस का अहनिसि, सरस्वती का सरसइ, उश्वास का उसास, स्वजन का सजन, स्वामी का साईं (च) आत्मनः का आपन, (छ) सत्य का साँच, अद्य का आज, वाद्य का वाजा, द्यूत का जूआ, युद्ध का जूझ, योद्धारः का जुझारा, मध्य का माझ। (ज) भिन्दिपाल का भिण्डपाल (झ) व्यञ्जन का विंजन, शस्य का ससि, अगस्त्य का अगस्ति, याज्ञवल्क्य का जागवलिक, अव्यक्त का अविगत, अवश्य का अवसि (ञ) असि का हसि, उल्लास का हुलास, केसरी का केहरी। (ट) गर्त्त का गाड (ठ) धैर्य्य का धीर, तूर्य्य का तूर, आर्य्य का आरज (ढ) श्मशान का मसान। स्थपति का थपति, स्थिति का थिति, (ण) वत्स का वच्छ, अप्सरा का अपछरा (त) दृष्टि का दीठ, (थ) अस्त का अथय (द) क्षीर का खीर, क्षीण का खीन (ध) दक्ष का दच्छ, अक्ष का अच्छ, (न) सार्ङ्ग का सारंग, प्रज्वल का परजरा, लुब्ध का लुबुध, प्रीति का पिरीत, शत्रुघ्न का सत्रुघुन, श्लोक का सिलोक, बर्हि का बरहि, अस्ति का अहइ रूप होता है।

---

*युक्तविधि—(क) उपरिलोपः क ग ड त द प श ष साम्। (ख) क ग ट ड त द प श ष सा मूध लुक् शेषाणां द्वित्वम्। (ग) अवर्णे यः श्रुतिः। (घ) अद्योमनयाम्। (ङ) सर्वत्रलवराम् (च) आत्मनिपः। (छ) स्य ध्य द्या च छ झाः। ह्यध्ययो र्झः। (ज) भिन्दिपालेण्डः। (झ) इः स्वप्नादौ। (ञ) लुकादीनां हः। (ट) गर्ते च डः। (ठ) तुर्य्यं धैर्य्य सौन्दर्य्याश्चर्य्यं पर्यन्तेषु। (ड) र्य्यंयोर्जः। (ढ) श्मश्रु श्मसानयो रादेः। (ण) श्च त्सप्सां छः। (त) ष्ट स्य ठः। (थ) स्तस्य थः। (द) प्क स्फ क्षां खः। (ध) अक्ष्यादिपुच्छः। क्षः खः। क्वचित् छ भौ। (न) विप्रकर्षः।

❀ **सङ्कीर्ण विधि**—४—सङ्कीर्ण विधि के अनुसार (क) राजकुल का राउर, भाण्डागार का भंडार (ख) गजेन्द्र का गयंद, चीत्कार का चिक्कार, योद्धारः का जुझार। (ग) लब्ध का लाध, अन्य का आन, हट्ट का हाट, दृष्टा का दीसा, मल्ल का माल, रक्त का राता, तुल्य का तूल, अङ्क का आँक, तुष्टि का तोषि, इष्ट का इस, गर्जहिं का गाजहिं, नष्ट का नाट, पर्ण का पान, दर्प का दाप, पत्री का पाती, पल्लव का पालव, मज्जा का माजा, पट्ट का पाट। (घ) भ्रुकुटि का भृकुटि। (ङ) वक्र का बंक, पक्ष का पंख, (च) सरोवर का सरवर, ऋषयः का ऋषय (छ) आशङ्का का असंका, वञ्च्यौ का वंच्यौ, दण्ड का दंड, सन्त का संत, झम्प का झंप, (ज) हृदय का हिय, (झ) सीमन् का सीमा, (ञ) हरिम् का हरिं, वत्सलम् का वत्सलं (ट) कृपा का कृपालु, जाम्बवान का जामवंत, हनुमान् का हनुमंत, (ठ) गिरः का गिरा, भीः का भीर, (ड) भाव का भाय, (ढ) धामन् का धाम, कदाचित् का कदाचि, अहं मम का अहमम (ण) भवति का होति, (त) प्रभूत का बहुत, (थ सिंहासन का सिंघासन, नहुष का नघुष, सिंहल का सिंघल, (द) उल्का का लूक, उपार्जन का उपराजन, तिर्वक् का त्रिजग, व्यंग्य का विंग्य, पर्यन्त का प्रजन्त, लघु का हरु, (ध) दुहितृ का धुआ, भगिनी का बहिनी, (न) श्रृंगवेर का सिंगरौर, जनकपुर का जनकौर, चतुर्थी का चौथ, चतुर्द्वार का चौवारा, ईरपा का आरेस, कर्णधार का कंडहार, प्रत्यंचा का पनच, पृथ्वी का पुहुमी, सम्बन्ध का सनमंध, राज्ञी का रानी, श्वापद का साउज, महानस का भानस, शपथ, का सौंह कोटि का करोरि रूप होता है।

❀**सङ्कीर्णविधि**—(क) सन्धाव चामजूलोपविशेषो बहुलम्। (ख) युते ह्रस्वः (ग) शेये द्वित्व मनाप्तं दीर्घः स्यात्। (घ) इर्भ्रुकुटौ। (ङ) वक्रादिषु (च) ओत्वं लुक् च विसर्गस्य। (छ) ङ ञ ण नो व्यञ्जनस्य। (ज) दस्य हृदये। (झ) काश्मीर सीमोर्म्नो मानः स्त्रियाम्। (ञ) मो विन्दुः। (ट) आलिव ह्लो ह्लालव न्तेन्तामतुपः। पक्षेपन्तादेशः। (ठ) रोरा। (ड) यावदादिपुवस्य। (ढ) अन्त्यस्य हलो नित्यम्। (ण) अवाययो रोत्। (त) प्रभूते वः। (थ) होघोऽनुस्वारात्। (द) व्यत्ययश्च। (ध) दुहितृ भगिन्यौ धुआवहिण्यौ (न) दाढादयो बहुलम्।

लिङ्गविधि ५—लिङ्गविधि में **'लिङ्गमन्त्रम्'** इस सूत्र के अनुसार लिङ्ग में प्रायेण व्यभिचार होता है। यथा–**'प्रश्न उमा कै सहज सोहाई।'** यहाँ प्रश्न शब्द को स्त्रीलिङ्ग माना, इत्यादि।

सुवन्तविधि ६- सुवन्त विधि–**'उच्चस्वमोः'** इस सूत्रसे कहीं सु और अम् को उ आदेश होता है। यथा–**'रामु न सकहिं नाम गुन गाईं।'** **'नामु सप्रेम** जपत अनयासा।' यहाँ राम शब्द के सु को उ आदेश हुआ, तथा नाम के अम् को भी हुआ।

'जश् शस् ङ स्यां सु दीर्घः' इस सूत्र से कहीं प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में अकारान्त शब्द के अन्त्याकार को दीर्घ हो जाता है। यथा–नर का बहुवचन नरा, प्रसंग का प्रसंगा इत्यादि। **'नरादरेण ते पदं'**; तथा **'पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा'** में नरा आदरेण में सन्धि होकर 'नरादरेण' हुआ, प्रसंग शब्द के बहुवचन का रूप 'प्रसंगा' है। अर्थात्, रघुपति-कथा प्रसङ्गों को।

'ऋत आरः सुपि' इस सूत्र से भर्तृ शब्द का भर्तार रूप हो गया। यथा– **'चाहहुँ सदा सिवहिं भरतारा'**।

'आट्टोजानुस्वारः' इस सूत्र से तृतीया के एकवचन में अनुस्वार लग जाता है। सप्तमी आदि विभक्ति में भी ऐसा ही होता है। यथा–**'जासु कृपाँ सो दयाल।'** **'अवधपुरीं यह चरित प्रकासा।'** **'सतीं दीख कौतुक मग जाता।'** यहाँ 'कृपाँ' का अर्थ कृपा से, अवधपुरीं का अर्थ अवधपुरी में, सतीं का अर्थ सती ने होता है।

धात्वादेश ७—धात्वादेश विधि में **'खिदेर्विसूरः'** से बिसूरइ का अर्थ हुआ 'खेद करता है'। यथा–**'जिमि करुना बहु वेष बिसूरति'** का अर्थ हुआ 'मानो करुणा अनेक वेष से खेद करती है'। **'तिष्टेः स्थः। थकः स्थः'** से थकइ का अर्थ हुआ 'ठहरता है'। यथा–**'रथ समेत रवि थाकेउ'** का अर्थ हुआ 'रथ के समेत सूर्य्य ठहर गये।'

उपसर्ग ८—उपसर्ग और निपात– **'अनुमोदने साधु'**, **'निरर्थकार्थे सुधा'**, **'अतर्किताथें सहसा तत्क्षणे सपदि'**, **'असन्मुखार्थे रहः'**,

'कुत्सार्थ कुः' इत्यादि। यथा–'साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना' अर्थात् ब्रह्मदेव ने शिवजी के वचन का अनुमोदन किया। 'मूढ़ मुधा का करेसि बड़ाई।' यहाँ मुधा निरर्थकके अर्थ में आया है। 'सहसा करि पाछे पछिताहीं।' यहाँ सहसा का प्रयोग अतर्कितार्थ में है। 'इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहिं सुनाई॥' यहाँ सपदि तत्क्षण के अर्थ में आया है। 'रहसि जोरि कर पति पद लागी।' यहाँ रहः शब्द असम्मुख (अकेले) के अर्थ में आया है। 'जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू।' यहाँ 'कु' शब्द कुत्सा के अर्थ में आया है।

परिशिष्ट ६—परिशिष्ट में "प्रकृतिःप्रत्ययसन्धिर्लोपविकारागमाश्च-वर्णानाम्। सुप् लुक् सुपां तिङां वा विपर्ययश्चात्र बहुलं स्युः॥ इह छन्दानुरोधेन वर्णानां गुरुलाघवम्। दीर्घता ह्रस्वता सुप्लुक् सुप्तिङ् लिङ्ग विपर्ययः॥ सुप् तिङ् विभक्ति लिङ्ग व्यत्यासाः स्वर विकर्षश्च। लोपः सुपां क्वचित् स्यात् युक्तात् पूर्वो गुरुर्न वा॥

अर्थात् प्रकृति प्रत्यय की सन्धि, वर्ण का लोप, वर्ण का आगम आदि प्राकृत में ग्राह्य हैं।

१—प्रकृति प्रत्यय की सन्धि–यथा—'जानौं मैं तुम्हारि प्रभुताई।' यहाँ प्रभु शब्द से भाववाचक 'ता' प्रत्यय लगने पर भी 'आई' प्रत्यय का जोड़ देना प्राकृतसम्मत है।

२—वर्ण का लोप-यथा—'चहत न भरत भूपतहिं भोरे।' यहाँ भूपतित्व शब्द के 'ति' का लोप करके, तथा 'सर्वत्रलवराम्' सूत्र से वकार का लोप करके 'भूपत' बना देना व्याकरणसम्मत है।

३—वर्ण का आगम-यथा–'तिनहिं सराप दीन्ह अति गाढ़ा।' 'गये राम सबके अस्थाना।' 'मोंहि बिनु को सचराचर माहीं।' इत्यादि। यहाँ शाप का सराप, स्थान का अस्थान, चराचर का सचराचर बना देना व्याकरणानुकूल है।

४—वर्ण विकार-यथा—'जोहसि सोहसि मुह मसि लाई।' 'सन्यपात जल्पसि दुर्बारा।' 'ससुर चक्कवइ कोसलराऊ।' 'जहँ तहँ तुमहिं अहेर

खेलाउब।' आदि में असि का हसि, सन्निपात का सन्यपात, चक्रपति का चक्कवइ, आखेट का अहेर रूप शुद्ध है।

५- सुप् का लोप-यथा- '**राम कहा तनु राखहु ताता।**' इत्यादि। यहाँ राम शब्द के 'ने' का लोप हुआ।

६-सुप् का विपर्यय-यथा- '**यो ददाति सतां शम्भुः।**' में चतुर्थी के स्थान में षष्ठी हुई।

७-तिङ् का विपर्यय-यथा- '**तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।**' यहाँ परस्मैपदी धातु में आत्मनेपदी विभक्ति लगा देना नियम-भङ्ग नहीं है।

८-छन्दानुरोध से ह्रस्वता और दीर्घता-यथा - '**ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्र सेव्यमनिशं।**' '**केकी कण्ठाभनीलं,**' '**नहिं कामी विषयावस**' इत्यादि। यहाँ छन्दानुरोध से ब्रह्म का ब्रह्मा, केकिकण्ठ का केकीकण्ठ, विषयवश का 'विषयावस' प्रयोग उचित है।

९- छन्द के अनुरोध से लिङ्ग-विपर्यय-यथा - '**निगम नेति सिव ध्यान न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा।**' इत्यादि। यहाँ '**जननी धाई**' का '**जननी धावा**' लिखना छन्द के अनुरोध से ठीक है।

१०-लिङ्ग विपर्यय-यथा- '**प्रश्न उमा कै सहज सोहाई।**' इत्यादि। यहाँ प्रश्न शब्द को स्त्रीलिङ्ग मान लेना सदोष नहीं है।

११- संयुक्ताक्षर का विकल्प से गुरु लघु होना-यथा-- '**मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।**' '**निकाम श्याम सुन्दरं**' इत्यादि। यहाँ 'कोटि' के 'टि' को गुरु माना, निकाम श्याम में निकाम के 'म' को लघु माना। यह भी प्राकृत नियम के अनुकूल है।

ग्रन्थकार संस्कृत, प्राकृत के पण्डित होने पर भी, प्रान्तीय भाषाओं पर भी पूरा अधिकार रखते थे। उन भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है यथा- 'लाघे, अवसेर, भरती' आदि मारवाड़ की बोली है। 'गाँड़र, सुआर' आदि रीवाँ प्रदेश की बोली है। 'धुआ, भानस' आदि पूर्व देश की बोली है। 'ओघे नेव' आदि चित्रकूट प्रान्त की बोली है। 'मरायल, घायल' आदि भोजपुर की बोली है। गुनाह आदि फारस देश की बोली है। 'साहिब गनी' आदि अरब

की बोली है। यही रीति हिन्दी कवि-समाज की है। काव्य-निर्णयकार लिखते हैं—

तुलसी गंग दोऊ भये सुकविन के सरदार।
इनकी कविता में मिली भाषा विविध प्रकार॥
ब्रज भाषा भाषा रुचिर कहैं सुमति सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारस्यौ पै अति प्रगटी होइ॥
ब्रज मागधी मिलै अमर नागयमन भाषानि।
सहज पारसी हू मिले षटविधि कवित बखानि॥

महात्मा लोग इनकी कविता का आदर शाबर मन्त्र की भाँति करते हैं। इसमें एक अक्षर का उलट-पलट उन्हें सह्य नहीं है। संस्कृत परिपाटी से इसे शोधने का प्रयत्न साहस मात्र है। कवि की भाषा में परिवर्तन का किसी को अधिकार नहीं है।

अति संक्षेप में मानस की भाषा का दिग्दर्शन कराने का इसमें यत्न किया गया है। आशा है कि मानस-प्रेमियों को इससे कुछ सन्तोष होगा।

सियावर रामचन्द्र की जय।

धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो

प्राणियों में सद्भावना हो। विश्व का कल्याण हो।

श्रीराम जय राम जय जय राम!

मुद्रक—पं० वैकुण्ठनाथभार्गव, आनन्दसागर प्रेस, गायघाट, बनारस १.

श्रीरामचरित मानस

(सातो काण्ड)

यह जानकर आप लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि 'श्रीरामचरित मानस' के शुद्ध पाठ पर अखिल भारतीय श्रीरामचरित मानस सम्मेलन, काशी के प्रचार मन्त्री व्याख्यानवारिधि, साहित्यरत्न **श्रीगोस्वामी बिन्दुजी महाराज, वृन्दावन** द्वारा स्वीकृति मिल गयी है जिसमें "प्रस्तुत पुस्तक की आवश्यकता" भी आपने हो बड़ी सरलता के साथ लिखी है, तथा उपमन्त्री श्री लक्ष्मणशरण रस्तोगी जिन्होंने प्रामाणिक प्राच्य मानस ग्रन्थों द्वारा संशोधन किया है। साथ ही साथ मानस पूजनमन्त्र, रामशलाका प्रश्न, मासिक नवाह्निक पाठविधि आदि से सुसज्जित सुन्दर छपाई के साथ बढ़िया कागज पर जनता के सेवार्थ व मानस के प्रचारार्थ छापा गया है। इसका मूल्य लागतमात्र ही रखा गया है। एक प्रति के लिये १॥), डाकखर्च ॥=) अलग से होंगे। शीघ्र मँगाइये थोड़ी ही छपी है।

प्रकाशक—

पं० कैलाशनाथ भार्गव 'अमर'

अध्यक्ष—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.

ब्राञ्च—कचौड़ीगली, बनारस।